

# ऐसे जिएँ

“हमारी सोच  
और शैली में  
ही छिपा है  
जीवन की  
हर सफलता  
का राज”



श्री चन्द्रप्रभ





# ऐसे जिऐँ

---

हमारी सोच और शैली में ही छिपा है  
जीवन की हर सफलता का राज

---

स्वस्थ, प्रसन्न और मधुर जीवन की  
राह दिखाने वाली प्रकाश-किरण

सौजन्य-संविभाग

---

श्री भगवानसिंह-लीलादेवी  
राजेन्द्र-शोभा, अभिनव परिहार,  
जोधपुर

# ऐसे जिऐँ

---

जीवन को इस तरह जिऐँ कि जीवन  
स्वयं वरदान बन जाए

श्री चन्द्रप्रभ

जितयशा फाउंडेशन, कलकत्ता

तृतीय संस्करण

अगस्त, २००१

ऐसे जिहँ

श्री चन्द्रप्रभ

सन्निधि : गणिवर श्री महिमाप्रभ सागर जी

सम्पादक : सोहन शर्मा

प्रकाशक : जितयशा फाउंडेशन,

१सी-एस्प्लानेड रो ईस्ट, रूम नं. २८

कलकत्ता-७०० ०६९

लेजर : ललित कम्प्यूटर सेन्टर, जोधपुर

मुद्रक : जयपुर प्रिन्टर्स प्रा. लि., जयपुर

मल्य : १५/-

## आमुख

हर दिल में जीने की ख्वाहिश है और हर आँख में सुनहरे कल का सपना । उस सपने को सच करने के लिए आदमी दिलो-जान से जुटा रहता है । जब ख्वाब हकीकत नहीं बनता, तो आदमी टूट-सा जाता है, कई-कई मानसिक उलझनें पाल लेता है । उसे जीने की कोई राह नजर नहीं आती । ऐसे में पूज्यश्री चंद्रप्रभजी की अमृत वाणी स्वस्थ-मधुर-प्रसन्न जीवन का संदेश लिये प्रकट होती है और कहती है—ऐसे जीएँ !

जीवन बहुत सरल है, मगर स्वयं आदमी ने ही आज उसे जटिल बना दिया है । हजारों दिक्कतों-दुश्वारियों के चलते आदमी के लिए जीवन भारभूत बन गया है । आदमी की सौम्य मुस्कान न जाने कहाँ खो गई है । इसी बोझिल बन चुके जीवन में नई ऊर्जा, नई प्रेरणा फूँकते हुए पूज्य प्रवर कहते हैं कि जीवन से बढ़कर कोई आनंद नहीं है और न ही जीवन से बढ़कर कोई सौंदर्य । जिस व्यक्ति ने जीवन के मर्म को छुआ है, उसे जीया है, वह जानता है कि जीवन से बढ़कर कोई और वरदान नहीं हो सकता । इस ईश्वरीय सौगात को हम आनंदोत्सव बनाकर जीएँ; आनंद का महोत्सव बनाकर जीएँ ।

मनुष्य का सफलता और विफलता के साथ सदा से नाता रहा है, लेकिन इस दौर में ये शब्द इतने उछले हैं कि हर सफलता और विफलता आदमी को पागल कर रही है । सफलता की खुशी को फिर भी काबू किया जा सकता है, मगर विफलता से उपजा पागलपन हर्दें पार कर जाता है और आदमी अचानक कोई आत्मघाती कदम उठा लेता है । दरअसल उस आदमी को अपने भीतर में दबी अकूत क्षमताओं का भान नहीं है । पूज्यश्री कहते हैं कि जीवन की हर असफलता सफलता की ओर बढ़ने की प्रेरणा है । जो असफलता से निराश हो जाते हैं, वे सफलता के शिखर की ओर नहीं बढ़ पाते । हम



अपनी हर असफलता को सफलता की मंजिल का पड़ाव भर समझें ।

‘ऐसे जीएँ’ जीवन के प्रति रहने वाले हर नकारात्मक दृष्टिकोण से मुक्त होने का आह्वान है । हमारे विचार सकारात्मक बने; हमारी सोच में समग्रता आए; हमारा जीवन आनंद, उल्लास और आत्मविश्वास से भर उठे, यही प्रभुश्री का सार-संदेश है । हम हर सूत्र को अपने में गहराई से उतारते जाएँ और टटोलते जाएँ अपने आपको । जब कभी विचारों के भंवरजाल में उलझा हुआ पाएँ और राह न सूझे, तो फिर-फिर इन अमृत संदेशों से गुजरें । इस उत्साह के साथ कि सुबह करीब है ।

—सोहन

## अनुक्रम

१. जीवन से बढ़कर ग्रंथ नहीं	१
२. मधुर जीवन के मूल मंत्र	८
३. बोएँ वही जो फलदायी हो	१४
४. स्वस्थ मन से करें दिन की शुरुआत	१९
५. पेश आएँ शालीनता से	२४
६. पहचानें, समय की नजाकत	३१
७. कोशिशों में छिपी कामयाबियाँ	३७
८. जीवन-विकास के नायाब पहलू— शिक्षा और स्वाध्याय	४३
९. लगे बुहारी अन्तर्-घर में	४९
१०. सुधरे संस्कार-धारा	५४
११. प्रेम से बढ़कर प्रार्थना क्या !	५९
१२. मन की धरा रहे उर्वर	६४
१३. दो मंत्र : मन की शांति के लिए	६९
१४. कैसे करें चित्त का रूपान्तरण	७४
१५. स्वस्थ सोच के स्वामी बनें	७९
१६. सकारात्मक हो जीवन-दृष्टि	८८
१७. जीवन की चिकित्सा ध्यान के द्वारा	९४



# जीवन से बढ़कर ग्रंथ नहीं

---

जीवन और जगत् को पढ़ना दुनिया की किसी भी  
महानतम पुस्तक को पढ़ने से ज्यादा बेहतर है ।

---

**य**ह सृष्टि कितनी सुन्दर, स्वर्गिक और मधुरिम है ! सृष्टि का पहला सत्य स्वयं सृष्टि का और सृष्टि पर हमारा होना है । सृष्टि को जब खुली आँखों से देखते हैं, तो सृष्टि का होना और सृष्टि में हमारे अस्तित्व का होना हमारे लिए सत्य का पहला कदम है । मुझे सृष्टि से प्यार है । जितना सृष्टि से है उतना ही सृष्टि पर जीवन जी रहे आप सब हम-मुसाफिरो से । जितना आप से और इस अखिल सृष्टि से प्यार है, उतना ही अपने आप से । मैंने कहा—अपने आपसे, पर यथार्थ तो यह है कि स्वार्थयुक्त व्यक्ति का केवल अपने आप से ही अनुराग होता है, लेकिन निःस्वार्थ चेतना के लिए स्व-पर का भेद मिट जाता है, 'वसुधैव कुटुम्बकम्' उसके जीवन का मंत्र हो जाता है ।

## ऐसा है जगत का सत्य

अपनी शांतचित्त-स्थिति में जब-जब भी बैठकर इस सारे जगत को निहारता हूँ तो अनायास ही जगत के प्रति अहोभाव उमड़ आता है यह देखकर कि यह सारी रचना कितनी सुंदर है । प्रकृति के द्वारा रचे गए पहाड़, उमड़ते-धुमड़ते बादल, चहचहाट करती चिड़ियाएँ, हवा के झोंकों से झूलती हरे-भरे वृक्षों की डालियाँ, समुद्र में उठती लहरें और मिट्टी की तहों में छिपा कुओं का मीठा पानी । कितना सुरम्य स्वरूप है यह सब ! सचमुच, हंसते-खिलते चाँद-सितारों को देखकर अंतरात्मा के गीत फूट पड़ते हैं और जब-तब

जीवन से बढ़कर ग्रंथ नहीं

निरभ्र आकाश को देखकर अन्तस् का आकाश रू-ब-रू हो जाता है ।

मैंने जगत के सौंदर्य को देखा है, किन्तु इतना कहना सत्य का एक पहलू है, मानव-मानव में फैली स्वार्थ-चेतना, अंधविश्वास की वृत्तियाँ और नासमझ कट्टरताओं और दुराग्रहों को देखकर मानवता का विकृत स्वरूप भी प्रतिबिम्बित हो जाता है । अपनी मुक्ति का रसास्वादन करने के लिए धर्म के द्वार पर दस्तक देने वाला इंसान निहित स्वार्थों के चलते पंथों और दुराग्रहों में बाँट दिया जाता है । लोग स्वांग को साधुत्व और अर्थहीन क्रियाओं को धर्म का पर्याय मान बैठते हैं और इस तरह विशाल बुद्धि का स्वामी इंसान किसी संकीर्ण दृष्टि के चंगुल में फंस जाता है । परिवारों पर जब नज़र डालते हैं, तो उनके अहं और उनकी घरेलू अव्यवस्थाएँ उनके खून को आपस में बाँट देती हैं । भाई को भाई से प्यार करता देख भला किसे खुशी न होगी, लेकिन भाई जब भाई के ही खून का प्यासा बन जाए, भाई-भाई के बीच ऐसी दरारें पड़ जाए कि एक-दूसरे का नाम लेना भी पसंद न करे तो ऐसी स्थिति में संसार की स्वार्थ-चेतना हमें जगत की निःसारता को समझने के लिए प्रेरित करती है ।

समाज में अलग-अलग कौम के लोग रहें तो यह तो समाज की खूबी है कि एक उपवन में कई तरह के रंग-बिरंगे फूल खिले हैं, पर हम ज़रा समाज की विकृत स्थिति पर ध्यान दें तो चौंक उठेंगे कि कोई भी कौम दूसरी किसी कौम के कल्याण के लिए प्रयत्न करती हुई नहीं मिलेगी । ओह ! इतने बड़े संसार को लोगों ने कितना छोटा बना लिया है । सागर की विशालता टंडी पड़ चुकी है और लोग अपनी-अपनी तलैयाँ को ही सागर मान बैठे हैं । लोग अपनी ही तलैयाँ को सागर बनाने के लिए उसके किनारों और पनघटों को खींच-खींचकर उसे संसार का सागर बनाना चाहते हैं ।

हमने जन्म भी देखा है, जवानी भी देख रहे हैं, रोग-बुढ़ापा और मृत्यु को अपने पर और औरों पर घटित हुआ जान रहे हैं । रोड़पति करोड़पति हो जाया करते हैं और करोड़पति रोड़पति । इस सुंदर सृष्टि पर किसका कौन-सा अगला चरण होगा, कहा नहीं जा सकता । पलक झपकते किसी की लुटिया डूब जाती है और देखते-ही-देखते किसी के नाम लॉटरी खुल जाती है । किसी के नाम मकान हो जाता है, तो किसी की कब्र खुद जाती है । यह काया कि जिस पर आदमी को इतना नाज़ है, जिसे बचाने और साधने के इतने सारे इंतजाम हैं, लेकिन इसके बावजूद किसकी काया कब शमशान और कब्रिस्तान में पहुँच जाए कोई खबर थोड़े ही है । कब किसकी राख नये जीवन की सूत्रधार बन जाया करती है और कब किसका जीवन दो मुट्ठी राख की पोटली, कहा नहीं जा सकता ।

## मैं अध्येता जीवन-जगत का

बड़ी विचित्रताओं से भरा है यह जगत । हमने अब तक केवल रामायण ही पढ़ी है, इस विराट जगत को नहीं; हमने केवल गीता और महाभारत को पढ़ा है, जीवन को नहीं; हमने केवल राम-कृष्ण-महावीर-बुद्ध से प्रेम किया है, अपने आप से नहीं । कितने ताज्जुब की बात है कि रामायण को सौ दफा पढ़ने के बावजूद हम राम न हो पाए और गीता का नियमित पाठ करने के बावजूद हमारे जीवन से उसके माधुर्य का, उसके सत्य और योग का गीत न फूट गया । केवल महाभारत को पढ़ लेने भर से क्या होगा, जब तक हमारी नपुंसक बन चुकी चेतना में 'भारत' का भाव न जगे, आत्म-विश्वास का सिंहत्व न भर उठे, जीवन-जगत का बोध न हो जाए ।

हम पढ़ें इस जगत को, जगत में हो रहे परिवर्तनों को देखें । आप पाएँगे रामायण अतीत की कृति नहीं, वरन यह जगत हर पल, हर क्षण रामायण और महाभारत की ही आवृत्ति है । कोई अगर मुझसे पूछे कि आपका धर्म कौन-सा है और शास्त्र कौन-सा, तो मेरा सीधा-सा जवाब होगा—जो धर्म मनुष्य का होता है, वही मेरा धर्म है और जिस प्रकृति ने इतने विचित्र और अद्भुत जगत की रचना की है, यह जगत और जगत पर पल्लवित होने वाला जीवन ही मेरा शास्त्र है । किताबों के नाम पर मैंने ढेरों किताबें पढ़ी हैं, न केवल पढ़ी हैं, वरन ढेरों ही मैंने कही और लिखी हैं, पर कोई अगर कहे कि मुझे सबसे सुंदर किताब कौन-सी लगी है तो मैं कहूँगा कि इस जगत से बढ़कर कोई श्रेष्ठ किताब नहीं है और जीवन से बढ़कर कोई शास्त्र नहीं है । मैं पाठक हूँ, अध्येता हूँ जीवन का, जगत का; मैं द्रष्टा हूँ जीवन-जगत की अपने सामने होने वाली हर इहलीला का ।

## बुद्धि की खाद भर हैं किताबें

मात्र किताबों को पढ़ने का काम उनका है जो बुद्धिमान हैं । किताबें बुद्धि की खाद हैं, किताबों के द्वारा बुद्धि का सिंचन होता है; किताबें तो बुद्धि की सहेली हैं, पर बुद्धि जीवन का अंतिम चरण नहीं, जीवन की समझ पाने का पहला आयाम है । बुद्धि से शुरुआत होती है, पर बुद्धि पर पूर्णाहुति नहीं । बुद्धि के आगे घाट और भी हैं । जीवन-जगत को वह व्यक्ति पढ़ना चाहेगा जो किताबों के भी पार चलना चाहता है, वास्तविक सत्य और रहस्य को जीना और जानना चाहता है । ऐसे व्यक्ति से ही अध्यात्म का जन्म होता है, उसमें ही अध्यात्म का अभ्युदय होता है ।

अध्यात्म कोई शास्त्र या वाद नहीं है कि जिसे पढ़ा जाए, कि जिसका पंडित हुआ  
जीवन से बढ़कर ग्रंथ नहीं

जाए, कि जिस पर तर्क-वितर्क किया जाए, कि जिसे सिद्ध और साबित किया जाए। अध्यात्म तो एक दृष्टि है, एक ऐसी दृष्टि जिसे हम अन्तर्दृष्टि कहेंगे। जिसकी अन्तर्दृष्टि खुल गई, बुद्धि तो उसकी चेरी बन जाती है। वह बुद्धि के आगे के द्वारों को खुला हुआ पाता है। आगे जो स्थिति होती है वह बुद्धि की नहीं, बोध और प्रज्ञा की होती है। उसकी स्थिति स्थितप्रज्ञ की, ऋजुप्राज्ञ की होती है।

धर्म का जन्म जीवन और जगत के सार और असार—दोनों पहलुओं के समझने-बूझने से होता है। शास्त्रों और किताबों के आधार पर धर्म का आचरण ज़रूर चलता रहता है, पर जीवन में धर्म का जन्म नहीं होता। मैंने कहा—आचरण चलता रहता है, पर हकीकत तो यह है कि जब जीवन में धर्म का जन्म ही नहीं हुआ तो उसका आचरण कैसे हो जाएगा। पाप-भीरू लोग धार्मिक किताबों को सुन-पढ़कर उनमें लिखी बातों को अपने जीवन में उतारने की कोशिश करते रहते हैं, लेकिन एक छोटा-सा प्रलोभन अथवा एक छोटी-सी विपदा भी उन्हें उनके द्वारा स्वीकार किये गये मार्ग से विचलित कर देती है। वे अपने समझे गये धर्म पर मक्कम नहीं रहते। वे फिसल जाया करते हैं। ऐसे लोगों को फिर-फिर थामने की ज़रूरत पड़ती है, पर अपनी आंतरिक मूर्च्छा से मुक्त न हो पाने के कारण वे थामे भी नहीं थमते।

धर्म उनके लिए नहीं है जो उसकी मुंडेर पर आ खड़े होते हैं। भला हर राह चलता आदमी हर किसी कुएं का मालिक थोड़े ही हो जाएगा। कुआं उनका नहीं है, जो उसकी मुंडेर पर बैठे हैं, वरन उनका है जिनमें कुएं का पानी पीने की प्यास है। प्रश्न है—आखिर यह प्यास मिलती कहाँ से है? प्यास भला कोई बाज़ार में बिकती है! प्यास तो अपने आप उठती है और यह प्यास जगती है तब जब व्यक्ति की अन्तरदृष्टि जीवन और जगत को पढ़ने की कोशिश करती है। जीवन और जगत को पढ़ना धरती की सर्वश्रेष्ठ कृति को पढ़ना है।

धरती पर ऐसा कोई भी पहलू नहीं है जिसका कोई सारतत्त्व न हो। ऐसा भी कोई पहलू नहीं है जिसमें निःसारता न छिपी हो। हर वस्तु में सार तत्त्व छिपा है और हर वस्तु में निःसार तत्त्व। सार को सार रूप जानना और असार को असार रूप, यही व्यक्ति की सत्य और सम्यक् दृष्टि है।

## जागे अन्तर्दृष्टि

हमें इस बात से कोई प्रयोजन नहीं होना चाहिए कि जगत को किसने बनाया या

जिसने जगत को बनाया उसको बनाने वाला कौन रहा । हमारी अन्तर्दृष्टि तो केवल इतना ही देखे कि यह जगत आखिर क्या है ? यह जीवन और इसका रहस्य क्या है ? धरती पर इतना दुःख क्यों है ? मैं स्वयं दुःखों का अनुभव क्यों करता हूँ ? मैं अपने आपको दुःखी देखना चाहता हूँ या सुखी ? अगर मुझमें सुख पाने की तृष्णा है, तो फिर भी मुझे दुःखों के दौर से क्यों गुजरना पड़ता है ? दुःख हैं, तो क्यों हैं ? दुःख है तो दुःख के कारण क्या हैं ? सुखी होना चाहता हूँ तो सुख को पाने के आधार-सूत्र क्या हैं ? जो जीवन और जगत को ध्यानपूर्वक देखता है, उसकी चेतना में मनन का अंकुरण होता है । मनन स्वयं मार्ग देता है, मनन से सत्य के मार्ग खुलते हैं, मनन से मनुष्य में मनु साकार होता है ।

मूल गुरु है जीवन और जगत को भीतर की खुली आँखों से देखा जाए । यह कला हासिल हो जाए । दुनिया की हर किताब और शास्त्र मंगल प्रेरणाओं को लिये होते हैं । किताबें मनुष्य के प्रबुद्ध होने में सहायक बनती हैं, पर किताबें अन्तिम सीढ़ी नहीं हैं । सीखने, पाने और जानने की ललक हो, तो सृष्टि के हर डगर पर वेद, कुरआन, बाइबिल के पन्ने खुले और बोलते हुए नजर आ जाएँगे । कभी चिड़ियों की चहचहाट पर ध्यान दें, वृक्ष के हिलते-डुलते पत्तों पर दृष्टि केन्द्रित करें । सागर और सरोवर में उठ रही लहरों को देखें । हिरणों को गुलाबों के भरे हुए और तितलियों को उड़ते हुए निहारें । कभी खिले हुए फूलों को देखें तो कभी पेड़ के पीले पड़ चुके पत्तों को गिरते हुए । सचमुच, ऐसा करके आप जीवन के कई-कई पाठ और अध्याय एक तरह से पढ़ चुके हैं ।

## पढ़ें-पढ़ाएँ जीवन की किताब

धरती का पहला शास्त्र स्वयं मनुष्य का जीवन है, दूसरा शास्त्र यह जगत है, तीसरा शास्त्र प्रकृति है और चौथा शास्त्र पवित्र किताबें । किताबें विचार और चिन्तन देती हैं, जबकि जीवन का पठन और पारायण अन्तर्दृष्टि । सत्य का बोध इसी से होता है, जीवन की वास्तविक समझ इसी से ईजाद होती है । व्यक्ति अपनी अन्तर्दृष्टि से देखकर जिस जागृति और परिणति तक पहुँचता है, वही उसका अनुभव-धन होता है । उसी से वह उपलब्ध होता है । उसके जीवन का, अन्तर्मन का अन्धेरा छंटता है ।

जीवन मेरा शास्त्र है और जगत मेरा गुरु । मैंने इसे पढ़ा है, मैंने इससे बहुत कुछ सीखा है । जीवन और जगत के प्रति सदा सजग रहने वाला उनके रहस्यों का भी द्रष्टा और ज्ञाता हो जाता है । क्या हम भीतर की आँख खोलकर उसका उपयोग *जीवन से बढ़कर ग्रंथ नहीं*



करेंगे—जीवन-दर्शन के लिए, जगत्-दर्शन के लिए; सत्यबोध और सदाबहार माधुर्य के लिए? अन्तर्दृष्टि पूर्वक जगत को देखने की कला आ जाए, तो जीवन स्वतः सकारात्मक होता जाएगा। सहिष्णुता साकार हो जाएगी और व्यर्थ की प्रतिक्रिया और तनाव से उपरत होते जाएँगे। हम सदा हृदयवान रहेंगे, हमारी बुद्धि की धार तीक्ष्ण और प्रज्ञापूरित रहेगी। कोहरा हमसे छँटता जाएगा, हम प्रकाश-पथ के अनुगामी होंगे।

## जिएँ प्रकृति के सान्निध्य में

हम जिएँ प्रकृति के सान्निध्य में। प्रकृति हमें अपनी प्रकृति से मुखातिब करवाएगी। हमारे जीवन को सहज और सरल बनाएगी। सरलता और सहजता के अभाव में ही दुःखों और तनावों की चीन-की-दीवार खड़ी होती है। प्रकृति जहाँ हमें जीवन की गहराई प्रदान करेगी, वहीं जीवन और जगत् के रहस्यों से रूबरू करवाएगी। हम प्रकृति के साथ जीकर तो देखें, आप ताज्जुब करेंगे कि फूलों को देखना केवल देखना भर नहीं होगा, हम स्वयं फूल की तरह खिलते जाएँगे। आप ध्यान से आकाश को देखें, आप पाएँगे भीतर-बाहर का भेद मिट गया। हम सागर की उठती-गिरती लहरों को देखें, हमें प्रतिक्षण हो रही परिवर्तनशीलता का आत्मबोध उपलब्ध होगा। उड़ते हुए पक्षियों को देखें तो हमारी धमनियों में भी मुक्ति का गीत फूट पड़ेगा। हम फूलों को चूमकर देखें, हमारे हृदय में प्रेम का सागर लहरा उठेगा। हम प्रकृति का सौन्दर्य देखें, प्रकृति का सौन्दर्य हममें नृत्य कर उठेगा।

## सहज हों जीवन के प्रति

हम जीवन के प्रति सहज हों। इतने सहज कि जैसे बूँद सागर में समाती है, घूँघरू पाँव में बजते हैं। जीवन में जो होना है, वह होता जाए। हम होनी का सामना करें। आप पाएँगे आपकी नैसर्गिक प्रतिभा ऐसे उजागर होकर आ रही है जैसे मेहंदी रचने के बाद ललासी। जीवन की सहजता आपको निर्भय बनाएगी। आपकी आस्था और विश्वासों के नित-नये द्वार खोलेगी। परिस्थितियाँ आप पर हावी हों, उससे पहले आप उस पर अपना नियन्त्रण और स्वामित्व कर लेंगे। आपका व्यक्तित्व प्रभावी होता जाएगा।

## मनन करें जीवन का

फुरसत के क्षणों में हम जीवन-जगत के बारे में मनन करें। मैंने पहले ही कहा है कि मनन स्वयं मार्ग देता है। बुद्धि का वास्तविक परिणाम पठन से नहीं, मनन से आता

है । बुद्धि को मनन का मार्ग मिल जाए, तो बुद्धि हमारे सामने समाधानों का सूरज उगा देगी । जीवन की हर समस्या का समाधान व्यक्ति की बुद्धि और उसकी अन्तरात्मा में समाया है । हम जीवन के व्यावहारिक पहलुओं पर तो मनन करें ही, जीवन-जगत के आन्तरिक पहलुओं पर भी मनन करें । मैं कौन हूँ, मैं जगत में कहाँ से आया हूँ, मेरे जीवन का मूल स्रोत क्या है, मेरी चेतना कहाँ उलझी है, अपने स्वभाव की सौम्यता के लिए मुझे क्या करना चाहिए । ये वे पहलु हैं, जिन पर किया गया मनन हमें जीवन की गहराई देगा । महत्त्व इस बात का नहीं है कि हम कितने वर्ष जिए; वरन इसका है कि हम कितने गहरे उतरकर जिए । बंध्या का जीवन क्या जीना, अपनी समझ को पैदा करके जिएँ ।

सहजतया कहे गए ये तीन सूत्र हममें गहराई देंगे । जीने की कला प्रदान करेंगे । हम जीवन और जगत को पढ़ें, समझें और पिंजरे से मुक्त हो चुके पंछी की तरह मुक्त उड़ान भरें ।



# मधुर जीवन के मूल मंत्र

---

जीवन को हम इस तरह जिएँ कि जीवन स्वयं  
प्रभु का प्रसाद और वरदान बन जाए

---

**सुख-शांतिपूर्वक जीवन-यापन करना जीवन की श्रेष्ठ उपलब्धि है।** दुनिया में दो किस्म के लोग हैं, एक वे जो जीवन के भूखे हैं, दूसरे वे जो सुख से जीने के लिए तरस रहे हैं। जो औरों के जीवन के भूखे हैं, वे भी रुग्णचित्त हैं और जो जीने के लिए तरस रहे हैं, वे भी किसी-न-किसी मानसिक अथवा व्यावहारिक विपदा के रोग से घिरे हुए हैं। दुनिया में दुःख के बहुतेरे रूप हैं। किसी के घर संतान पैदा होने से थाली बजती है तो किसी के घर बच्चा पैदा होने पर आँसू ढुलकाये जाते हैं, यह सोचकर कि पहले से ही छः हैं, अब सातवें का भरण-पोषण कैसे होगा ! संभव है जन्म किसी को सुख भी दे दे, पर रोग, भुखमरी, बेरोजगारी, बुढ़ापा और मृत्यु की घटना भला किसे सुख देती होगी ! दुनिया में लाखों-करोड़ों अस्पताल और चिकित्सकों के होने के बावजूद दुनिया की आधी से ज्यादा संख्या रुग्ण और दुःखी है।

यह मनुष्य की विडम्बना है कि वह केवल धन-संपत्ति और सुविधा-साधनों को ही जीवन के सुखों का मूल आधार मानता है, जबकि एक अधिसंपन्न सभ्रान्त व्यक्ति जितना चिंतित, तनावग्रस्त और रुग्णचित्त मिलेगा, उतना एक सामान्य व्यक्ति नहीं। ज़रा किसी पैसे वाले व्यक्ति की ज़िंदगी पर ध्यान देकर देखें। उसकी सेवा में दस गाड़ी-बंगले और नौकर मिल जाएँगे, पर उसकी भागमभाग जिंदगी में इतनी भी फुर्सत

नहीं कि वह अपने बच्चों को प्यार दे सके; माता-पिता और भाई-बहनों के सुख-दुःख में सहभागी हो सके। उसे दिन में कोर्ट और फैक्ट्री के दस लफड़े निपटाने हैं। भरेपेट भोजन नहीं कर सकता, क्योंकि चर्बी की तकलीफ है; भोजन भी बिना तेल-घी-मिर्च-मसाले का है, क्योंकि ब्लड प्रेशर और टेन्शन की तकलीफ है; हार्ट की तकलीफ भी अधिकतर इन्हीं लोगों को होती है। तो क्या हम इस सारे स्वरूप को ही सुखी जीवन कहते हैं? सुखी वह नहीं है जिसके पास मोटर-बंगला है, वरन् वह है जो चैन की नींद सोता है और स्वस्थ मानसिकता का मालिक है।

## समझें, जीवन का मूल्य

प्रकृति की दृष्टि में तो हर व्यक्ति अधिसंपन्न है। अपने आपको दीन-हीन समझना स्वयं की अज्ञानता है। क्या हम जीवन का मूल्य समझते हैं? माना कि सोने और हीरे-जवाहरात का मूल्य है, पर क्या जीवन से ज्यादा है? वास्तव में जीवन है, तो तुच्छ-से-तुच्छ वस्तु भी बहुमूल्यवान है। जीवन नहीं है, तो मूल्यवान वस्तु भी अर्थहीन है। एक अकेले जीवन के समक्ष पृथ्वी भर की समस्त सम्पदाएँ तुच्छ और नगण्य हैं।

कृपया अपने आप पर ध्यान दें। इस बात को जानकर आप चमत्कृत हो उठेंगे कि हर व्यक्ति अपने आप में अकूत संपत्ति का खजाना है। ज़रा मुझे बताएँ कि दुनिया में गुर्दे का, रक्त का, हृदय और आँखों का कितना मूल्य है? एक आदमी के गुर्दों, हृदय और आँखों तक का मूल्य मिला लिया जाए, तो हाल ही के दामों से ऐसा कौन-सा व्यक्ति नहीं है, जो करोड़पति न होगा। हम अपनी दीन-हीन भावना का त्याग करें, हमारा एक शरीर अपने आप में करोड़ों का है। एक करोड़पति सैंकड़ों-हजारों के लिए रोये! हम हृदय से प्रफुल्लित हों और प्राप्त जीवन के लिए ईश्वर के प्रति कृतज्ञता से भर उठें।

व्यक्ति का जीवन दुःखी इसलिए है, क्योंकि वह रुग्ण और विक्षिप्त-चित्त है। स्वर्ग और नरक कोई आसमान और पाताल के नक्शे नहीं हैं, वरन् ये दोनों जीवन के ही पर्याय हैं। शांत चित्त स्वर्ग है, अशांत चित्त नरक; प्रसन्न हृदय स्वर्ग है, उदास मन नरक। हर प्राप्त में आनंदित होना स्वर्ग है, व्यर्थ की मकड़ लालसाओं में उलझे रहना नरक। यह व्यक्ति पर निर्भर है कि वह अपने आपको नरक की आग में झुलसाए रखना चाहता है या स्वर्ग के मधुवन में आनंद-भाव से अहो नृत्य करना चाहता है। हम अपने शारीरिक और मानसिक रोगों से, आशंका, उद्वेग और उत्तेजनाओं से स्वयं को उपरत करें और जीवन को सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् के मंगलमय पथ की ओर अग्रसर करें

जीवन के संपूर्ण सौंदर्य और माधुर्य के लिए केवल उसका रोगमुक्त होना ही पर्याप्त नहीं है, वरन् शारीरिक आरोग्य के साथ विचार और कर्म की स्वस्थता-स्वच्छता और समरसता भी अनिवार्य चरण है। शृंगार-प्रसाधनों को अथवा जूते-चप्पल-सैंडल और कपड़े के ऊँचे-नीचे पहनावे को सुख-सौंदर्य का आधार न समझें। स्वस्थ, सुंदर और मधुर जीवन के लिए हमें जीवन के बहुआयामी पहलुओं की ओर ध्यान देना होगा। आओ, हम ऐसे कुछ पहलुओं को जीने की कोशिश करें, जिनसे कि हमें हमारे जीवन का स्वास्थ्य मिल सके।

## स्वस्थ जीवन के लिए सात्विक आहार

स्वस्थ जीवन के लिए इस बात का सर्वाधिक महत्व है कि हम क्या खाते-पीते हैं। जब तक व्यक्ति यह नहीं समझेगा कि आहार कब-क्यों और कैसा लेना चाहिए, तब तक व्यक्ति जब-तब रोगों से घिरा हुआ ही रहेगा। आहार जीवन के वाहन का ईंधन है। आहार करने का अर्थ यह नहीं कि जब-जो मिल गया तब वह खा लिया। पेट कोई कूड़ादान नहीं है। सही ईंधन के अभाव में यंत्र की व्यवस्था गड़बड़ा सकती है। स्वस्थ जीवन के लिए भोजन का स्वस्थ-सात्विक होना जरूरी है।

आखिर जैसा हम खाएँगे, वैसा ही तो परिणाम आएगा। बर्तन पर जैसा चिह्न उकेरेंगे, वही उभर कर आएगा। मन के परिणाम अगर विकृत हैं, तो मानकर चलो कि तुम जो आहार ले रहे हो उसमें कुछ-न-कुछ विकृति अवश्य है। रक्त-शुद्धि और रक्त-गति के समुचित नियंत्रण के लिए भी आहार की स्थिति और गति पूरी तरह प्रभावी होती है। यह आम समझ की बात है कि जैसा खावे अन्न, वैसा रहे मन। यदि आप शराब पीएँगे, तो शरीर को गति देने वाली कोशिकाएँ सुप्त और अवरुद्ध हो जाएँगी; जर्दा-तंबाकू का इस्तेमाल करेंगे, तो शरीर की हड्डियाँ गलने लग जाएँगी; अधिक भोग-परिभोग किया, तो काययंत्र की मूल ताकत कमजोर हो जाएगी यानी दीर्घ जीवन प्राप्त करने का इच्छुक व्यक्ति अपने ही कारणों से अपनी उम्र को घटा बैठेगा। दीर्घ जीवन के लिए तन-मन की शक्ति का संरक्षण और अभिवर्द्धन सहज अनिवार्यता है।

हम बासी भोजन, गरिष्ठ अथवा बाजारू भोजन से परहेज रखें। हम हमेशा घर में बना हुआ, ताजा-सात्विक भोजन ही ग्रहण करें। अधिक मीठा, अधिक खट्टा, अधिक नमकीन चीजों के उपयोग पर संयम रख सकें तो ज्यादा बेहतर है। भोजन ज्यादा न खाएँ, यथावश्यक भोजन करना ही स्वस्थ जीवन का मंगल सूत्र है। हाँ, यदि आवश्यकता से दो ग्रास कम ग्रहण करें, तो पेट की आँतों को भोजन पचाने में तनाव का सामना न

करना पड़ेगा। भोजन उतना हो, और वह हो जो हमें स्वास्थ्य और स्फूर्ति प्रदान करे। अधिक गरम और गरिष्ठ भोजन करने से वीर्यस्राव-रजस्राव हो जाएगा। आखिर शरीर तो उतने ही आहार की शक्ति ग्रहण करेगा, जितनी की उसे अपेक्षा है। वह भोजन घातक है, जो उत्तेजना जगाए या प्रमाद पैदा करे।

## थोड़ा-सा व्यायाम भी

यदि स्वस्थ भोजन करने के बावजूद शरीर में कमजोरी रहती है, शक्ति शिथिल रहती है, तो इसका अर्थ है कि शरीर के ऊर्जा-स्रोतों में कहीं कोई रुकावट आई है। तब हमें किसी स्वास्थ्य-चिकित्सक से अवश्य सलाह लेनी चाहिए। भोजन की सात्विकता के साथ हमें शरीर के विभिन्न अवयवों के स्वस्थ संतुलन हेतु थोड़ा-बहुत व्यायाम भी अवश्य करना चाहिए। इसके लिए हमें सूर्योदय से पहले दो किलोमीटर तक लंबी सांस लेते हुए टहल लेना चाहिए अथवा सुबह दस-पंद्रह मिनट तक कुछ योगासन कर लेने चाहिए। यदि समय और स्थान की सुविधा न हो, तो एक ही जगह पर दो-तीन मिनट की जॉगिंग/स्थिर-दौड़ कर लेनी हितावह है। इससे हमारे शरीर के जीवित कोष्ठ सक्रिय होते हैं, शरीर की जो कोशिकाएँ सुप्त या शिथिल पड़ी हैं, वे भी सक्रिय होकर हमारे लिए सहभागी बन जाती हैं।

हम अपने किसी भी कार्य को करने से पहले उसके बारे में थोड़ा-सा मनन करें। सोच-समझकर किया गया कार्य हमेशा वांछित परिणाम देता है। बिना सोचे-समझे किये गये कार्य पर अन्ततः पछताना पड़ता है। हर कार्य को उत्साह से करना चाहिए, पर इसका मतलब यह नहीं कि उसे जल्दबाजी में निपटाने की कोशिश की जाए। बुद्धिमान पुरुष काम करने से पहले सोचता है; समझदार व्यक्ति काम करते समय सोचता है, जबकि मूर्ख काम करने के बाद। भला जब प्रकृति ने हमें श्रेष्ठ बुद्धि प्रदान की है, तो क्यों न हम बुद्धिपूर्वक ही हर कार्य को संपादित करें।

## न उलझें लालसाओं में

हम व्यर्थ की लालसाओं में भी न उलझें। आवश्यकताओं के अनुसार सभी कुछ संजोया जाता है, लेकिन आवश्यकता से अधिक किसी भी चीज की व्यवस्था करना जहाँ सामाजिक अपराध तो है ही, वहीं उसे संभालने-सजाने और उसकी सुरक्षा की अनावश्यक सरपच्ची करनी पड़ती है। हमारे पास अगर जरूरत से ज्यादा है, तो उसे जरूरतमंद लोगों को प्रदान कर दें। आवश्यक सब कुछ हो, अतिरिक्त कुछ नहीं—अपने

आप में यह अपरिग्रह-धर्म का पालन है। भौतिक सुखों का कोई अंत नहीं है। ये सब तो वे चापलूस शत्रु हैं, जो दिन-रात हमारा खून चूसते रहते हैं। हम लालसाओं में न उलझें, जीवन के आवश्यक कार्यों और कर्तव्यों का पालन करें। सभी कार्य और कर्तव्य जीवन-पथ के देवदूत होते हैं। कर्तव्य को कर्तव्य की भावना से निष्ठापूर्वक संपादित करना देवों की ही अर्चना है।

आप सबल हैं, समर्थ हैं, सौभाग्यशाली हैं, इसीलिए आपके पास जरूरत से ज्यादा अर्जित होता है। जो भोगा सो पूरा हुआ, जो बचा सो लुटा दिया। अरे, तुम दाता बनो। तुम्हारे हाथ सदा लुटाते रहें। देकर खुश बनो। जो भोगा सो मिट गया, जो बाँटा सो बढ़ गया। जो छिप-छिपकर खाता है, वह पाखाने तक पहुँच जाता है और जो बाँट-बाँटकर स्वीकार करता है, उसके लिए भोजन प्रसाद बन जाता है। हम अपरिग्रह/असंग्रह को अपने जीवन में जीएँ और जो कुछ भी हमारे पास अतिरिक्त आता जाए, उसे निःस्वार्थ आनंद भाव से जगत की व्यवस्था में अपनी ओर से समर्पित कर दें। नाव पर उतना ही भार वहन करें कि वह हमें किनारा दिखा सके। अतिरिक्त चढ़ाया गया भार नाव को मझधार में ही डुबोता है।

## न गिला, न गुमान : सदाबहार प्रसन्नता

अपनी ओर से भरसक कोशिश रहे कि सदा सत्यवाणी बोलें और सत्य का समर्थन करें। हर व्यक्ति और हर परिस्थिति के प्रति समान दृष्टि रखें, समदर्शी रहें। निंदा-प्रशंसा, अमीरी-गरीबी, हानि-लाभ दोनों ही स्थितियों में समान रहें। यह कुदरत की व्यवस्था है कि कोई भी परिस्थिति एक जैसी नहीं रहती। अगर अनुकूल है तो वह भी बदल जाती है और प्रतिकूल है तो वह भी। जब परिवर्तन ही कुदरत की आत्मा है, तो अनुकूलता पर गुमान कैसा और प्रतिकूलता पर गिला कैसा ! तकलीफ को पाकर खिन्न न हों। विश्वास रखो। ईश्वर के घर में अंधेरा नहीं है। जीवन में एक द्वार बंद होता है, तो दूसरा खुल भी जाया करता है। यदि कोई हमारे साथ गलत व्यवहार कर दे, हमारी उपेक्षा कर डाले, तो दुःखी और क्रोधित होने की बजाय उसके प्रति अपने हृदय में क्षमा और करुणा के मेघ उमड़ने दें, ताकि हमारा चित्त तो शीतल रहे ही, संभव है हमारे कारण अगले का क्रोध भी शीतल हो जाए।

हम अच्छे लोगों की संगत में रहें, अच्छे लोगों को अपनी संगत में रखें, जिससे कि हमारा ज्ञान और विवेक बना रहें। सदा सौम्य और प्रसन्न रहें। विपरीत परिस्थितियों को अपनी प्रसन्नता छीनने का अधिकार न दें। प्रतिकूल पहलुओं से सामना हो जाने

के बावजूद अपनी ओर से सदा सकारात्मक कदम उठाएँ। जीवन को मधुर बनाने के लिए हम दूसरों का सम्मान करना सीखें। जैसा सम्मान हम स्वयं के लिए चाहते हैं, वैसा ही हम सभी प्राणियों का सम्मान करने का अभ्यास करें। हम इस बात की शपथ ग्रहण करें कि मैं बिना किसी भेदभाव अथवा पक्षपात के सभी लोगों के जीवन एवं प्रतिष्ठा का सम्मान करूँगा।

हम प्रतिदिन एक व्यक्ति में कोई-न-कोई विशेषता अवश्य पहचानें और उसकी अनुमोदना करें। कोशिश करें कि हम प्रतिदिन एक अच्छा कार्य अवश्य करें। जब भी किसी से मिलें, मुस्कुराकर मिलें। कोशिश करें कि हमें जो कौशल प्राप्त है, हम उसे दूसरों को सिखाएँ। पड़ोसियों से प्यार करें और इस तरह अपने इर्द-गिर्द के वातावरण को प्रसन्न और सुरभित होने दें। सदा स्वच्छता रखें और अपने ग्रह की रक्षा करें। जितनी अपनी आजीविका हो, उसका एक अंश जरूरतमंद लोगों एवं कल्याणकारी कार्यों के लिए समर्पित करें, ऐसा करके आप पाएँगे कि हमें केवल कमाना ही सुख नहीं देता, वरन सहयोग भी हमारे सुख और माधुर्य को बढ़ा रहा है।

ये जो छोटी-छोटी बातें हैं, अगर इन पर हम पूरा ध्यान दे सके, तो लघुता में प्रभुता बसे, ये छोटी बातें स्वस्थ-सुंदर और मधुर जीवन के लिए चमत्कारी मंत्र साबित हो सकती हैं। सचमुच, जीवन को हम इस तरह जीएँ कि जीवन स्वयं प्रभु का प्रसाद और वरदान बन जाए।





# बोएँ वही, जो फलदायी हो

---

जीवन में सदा वे बीज बोएँ,  
जिन्हें काटते समय खेद और कटुता न हो ।

---

**म**नुष्य जैसा सोचता है, वैसा ही उसका व्यवहार होता है । वह जैसा स्वप्न देखता है, उन्हें पूरा करने का वैसा ही प्रयास करता है । व्यक्ति जैसा भी है, अपने ही कारण है । वह सुखी है, तो भी अपने ही कारण और दुःखी है, तो उसका आधार भी वह स्वयं ही है । वह गीत गाता है, तो अपने लिए गीतों की ही व्यवस्था कर रहा है; गाली-गलोच करता है, तो उपेक्षित और अपमानित होने के खुद ही बीज बो रहा है । जीवन में सब कुछ वही होता है, जिसका बीजारोपण उसके अतीत ने किया है । जीवन में मिलने वाले कड़वे फलों को देखकर चिंतित होने का कहाँ अर्थ है ! यह तो जीवन का प्रकृतिगत नियम है कि जैसा बोएँगे, वैसा पाएँगे । फूलों की व्यवस्था की है, तो फूल मिलेंगे; काँटे बोएँ हैं, तो पाँवों में काँटें ही आएँगे । हमारा जीवन एक गूँज की तरह है । हमें वापस वही मिलता है, जो हम अपनी ओर से किसी को देते हैं ।

## जगत : जीवन की प्रतिध्वनि

यह सारा जगत तो अन्तरात्मा का एक अन्तर्सम्बन्ध है । यहाँ प्रतिध्वनि वैसी ही होती है, जैसी व्यक्ति की ध्वनि होती है । प्रकृति की प्रतिक्रिया क्रिया के विपरीत नहीं होती । आप कभी किसी शांत-एकान्त स्थान में जाकर बाँसुरी की तान छेड़ेंगे, तो आप ताज्जुब करेंगे कि वहाँ का सारा वातावरण आपकी बाँसुरी के सुर-संसार का सहभागी ।

बन चुका है; हवा भी उस राग से भीग उठती है; वृक्षों की डालियाँ-पत्तियाँ, यहाँ तक कि झरनों तक में भी अपनी बाँसुरी को प्रतिध्वनित होते हुए पाओगे। यह हर प्रतिध्वनि हम पर ही बादलों की रिमझिम फुहारों की तरह बरसेगी। तब हमारा रोम-रोम पुलकित हो उठेगा, हम हर रूप में उसी स्वर-लहरी को आत्मसात होता हुआ पाएँगे।

वहीं हम किसी सूने जंगल में बेसुरी आवाज करें, कुएँ में मुँह डालकर हो-हल्ला करें, हम सचमुच दो-पाँच मिनट में ही पागलों-सी हरकत करने लगेंगे। कुएँ की जो प्रतिध्वनि होगी, वह हमें भूतों की आवाज महसूस होगी। हम भयभीत हो उठेंगे। जंगल की प्रतिध्वनि से हमें ऐसे लगेगा कि मानों कहीं बादल गरजा हो या पहाड़ फूटा हो। हम हक्के-बक्के हो उठेंगे।

चाहे व्यक्ति का यह पागलपन रहा या सुर-संसार की संरचना—दोनों व्यक्ति के अपने ही परिणाम रहे। क्या हम इसी नियम के आधार पर यह नहीं मान सकते कि व्यक्ति के क्रोध के बदले में क्रोध ही लौट कर आता है, वहीं प्रेम और क्षमा के बदले में वैसा ही सद्भाव? भला धरती पर गुस्से और गालियों के बदले किसे प्रेम का सुकून मिला है। कोई महावीर जैसे संयमी और जीसस जैसे क्षमाशील हों, तो यह अपवाद ही कहलाएगा। नियम तो नियम होता है, उसमें अपवाद लागू नहीं होता। यह प्रकृति का सर्वसाधारण नियम है कि फलता वही है, जो बीज में होता है। औरों के लिए अच्छा बनना अपने लिए और बेहतर बनने की कला है।

## बीज बोएँ बेहतर

हम बीज बोते वक्त यह ध्यान नहीं रखते कि वह किन परिणामों को लिए हुए है। हम बिन सोचे बीज बो डालते हैं। अपने बोये हुए को भोगना तो सुखद लगता है, लेकिन उसे काटना दुःखद और दुष्कर। फूलों को भोगना कितना अच्छा लगता है, पर क्या काँटों को काटना इतना सहज है? आदमी का जीवन इतना विचित्र है कि उसमें गुलाब के फूल कम खिलते हैं और थोर के काँटे ज्यादा और जल्दी उग आते हैं। यह मानकर चलें कि जीवन में अगर बुराई है, तब भी और अच्छाई है तब भी, दोनों का जनक और प्रबंधक व्यक्ति स्वयं ही है। हम चाहें तो अच्छे फलों को पाने के लिए अच्छे बीजों को बो सकते हैं। हमें सचमुच जीवन और व्यवहार में वह बोना चाहिए कि जिसे काटते और भोगते वक्त हमें घुटन, ग्लानि और प्रायश्चित न करना पड़े।

हम अगर अपनी ओर से अच्छा बो रहे हैं, इसके बावजूद हमें गलत परिणाम

बोएँ वही जो फलदायी हो

मिल रहा है, तो चिंतित न हों। धीरज रखें, आज जो गलत मिल रहा है, तो वह हमारे किसी कल का परिणाम है। विश्वास रखें, निश्चित रहें; प्रकृति के कायदे-कानून नहीं बदलते। वह हमें उसका अच्छा परिणाम जरूर लौटाएगी, जो हम आज अच्छा कर रहे हैं। हमारा हर कृत्य आने वाले कल की सौगात है। प्रकृति हमें वही सौगात और उपहार लौटाती है, जैसा-जिस भाव से हमने उसे समर्पित किया है।

सौहार्द और प्रेम के बदले में आत्मीयता और समर्पण ही लौटकर आते हैं, इसलिए हमारी ओर से किसी पर की जाने वाली दया और करुणा, वास्तव में अपने आप पर की जाने वाली दया और करुणा है। किसी अन्य को हानि या क्षति पहुँचाना, स्वयं के लिए ही आत्मघातक है। जीव-दया आत्मदया है और जीव का वध, आत्मवध। आपने ये दो प्यारी पंक्तियाँ सुनी होंगी—

देते गाली एक हैं, उल्टे गाली अनेक ।

जो तू गाली दे नहीं, तो रहे एक की एक ॥

बड़ी विचित्र बात है कि गणित में एक और एक दो होते हैं, पर गालियों का गणित-शास्त्र एक और एक को मिलाकर कई गुना कर देता है। गालियों के मामले में जोड़ें कम होती हैं, गुणनफल ही ज्यादा होते हैं। कहीं आप यह प्रयोग करके देख मत लीजिएगा, लेने के देने पड़ जाएँगे। बातें, बातों तक सीमित नहीं रहतीं, वे आगे बढ़ जाती हैं। यह आप भलीभाँति जानते हैं कि बातें जब आगे बढ़ती हैं तो वे बातों तक ही सीमित रहती हैं या लातों तक; इसका कोई तय हिसाब नहीं है।

## परिणामों का पूर्वबोध रहे

जीवन के प्रति सजग न रहने के कारण ही अथवा अपने कृत्य के परिणामों का पूर्वबोध न होने की वजह से ही व्यक्ति गलती करता है। वह न केवल गलती करता है, वरन् उसी गलती को दोहराता रहता है, गलती का पिष्ट-पेषण होता रहता है। व्यक्ति हर कार्य को करने से पहले या हर वाक्य को बोलने से पहले किंचित् यह बोध या सजगता धारण कर ले कि मैं जो कर या कह रहा हूँ, वह किसी रूप में अमंगलकारी या किसी के लिए अनिष्टकारी तो नहीं है? हमारा हर कृत्य और वाक्य स्पष्ट, सरल और बोधगम्य होना चाहिए, किसी व्यंग्य या रहस्यमय पहेली की तरह नहीं। व्यक्ति को ऋजु और निर्मल होना चाहिए, अंधेरी गलियों जैसा नहीं।

अच्छाई वापसी का रास्ता ढूँढ़ लेती है। हमारा अच्छा और भला किया कभी

व्यर्थ नहीं जाने वाला । चाहे हमारे विचार हों या व्यवहार, काम हो या निर्माण, वे आज नहीं तो कल, तेजी से लौट आने वाले हैं । स्वयं के स्वस्थ, सफल और मधुर जीवन के लिए हमारे हर कार्य की शुरुआत स्वस्थ हो, सही हो, स्वस्तिकर हो । इसी तरह उसका मध्य और अंतिम परिणाम भी उसी के अनुरूप हो । हमारी वाणी सही हो; शरीर के द्वारा होने वाला कर्म और आजीविका सम्यक् हो; हमारा हर अभ्यास और व्यापार सही हो । जीवन और जगत के प्रति हमारा हर भाव और दृष्टिकोण शुद्ध और स्वार्थरहित हो; हम अपने हर कर्म को करने से पहले विवेकपूर्वक यह जाँच लें कि इससे मेरा अथवा किसी अन्य का बुरा तो नहीं हो रहा है । हम वही कार्य संपादित करें जिससे स्वयं का भी भला हो और औरों का भी; खुद सुख से जीएँ और औरों को सुख से जीने का अधिकार दें, इसी से स्वयं का और सबके जीवन का मांगल्य सधता है ।

कर्म तेरे अच्छे हैं, तो किस्मत तेरी दासी ।

नीयत तेरी साफ है, तो घर में मथुरा-काशी ॥

नेक कर्म और साफ नीयत—जीवन का मांगल्य साधने के ये दो आधार सूत्र हैं । सबके श्रेय और मांगल्य में स्वयं का कल्याण स्वतः समाहित है ।

## पलायन की प्रवृत्ति न पालें

मुझे अपने आप से प्यार है । जितना स्वयं से है, उतना ही आप से । न मैं स्वयं को दुःखी और कष्टानुभूति में देखना चाहता हूँ और न ही किसी और को । मैं स्वयं भी स्वस्थ, सुंदर और स्वस्तिकर जीवन में विश्वास रखता हूँ और अपने द्वारा सबके प्रति वैसा ही व्यवहार करता हूँ । मैं मानकर चलता हूँ कि मुझे स्वप्न में भी ऐसा कोई कार्य नहीं करना चाहिए, जिससे किसी का अहित हो । चूँकि मैं स्वयं का हित चाहता हूँ इसीलिए किसी और का अहित नहीं कर सकता । हाँ, यदि हमारे जीवन में हमें किसी बाधा या किसी कठिनाई का सामना करना पड़ता है, तो हमें इसके लिए या तो सहर्ष या समत्व भावना के साथ स्वयं को प्रस्तुत करना चाहिए, क्योंकि आज जो हमारे साथ हो रहा है उससे पलायन कैसा ! वह तो सौगात है हमारे अपने ही कृत्य की । हमारे साथ जो होना है, ए न बार उसे हो ही जाने दें । आखिर कोई भी बादल तभी तक तो गरजेगा जब तक उसमें पानी का भार होगा ।

किसी भी कटु बात या विपदा को सहन करने से स्वयं के गौरव और मूल्यों की छीजत नहीं होती, उल्टी बढ़ोतरी ही होती है । किसी ने गुस्सा किया और हम भी जवाब

बोएँ वही जो फलदायी हो

में गुस्सा कर बैठे, तो यह दोनों का ही बुद्धुपन रहा। उस गुस्से से दोनों में दूरी ही बढ़ेगी। भला गुस्सा किसी के हृदय में कभी सौहार्दपूर्ण जगह बना पाया है? क्रोध कोई सनातन धर्म नहीं है। यह पानी का बुलबुला या गरम हवा का झोंका भर है। उसके प्रेत-स्वरूप की उम्र कितनी!

यदि हमने किसी के गुस्से को विवेक और धीरज से पचा लिया, तो अवश्य ही इसका शुभ परिणाम आने की पूरी उम्मीद है। वह गुस्सैल व्यक्ति अपने क्रोध के शांत होने पर प्रायश्चित और आत्मग्लानि से भर उठेगा। उसे अपना कद छोटा महसूस होगा और वह अपनी अगली बातचीत में इस तरह से भाव और भाषा का उपयोग करेगा कि उसे सही में ही स्वयं के दुर्व्यवहार की पीड़ा हुई। उससे वह गलती दुबारा न हो, ऐसे संकल्प का बीज भी वह अपने आप में बो लिये जाने का भाव ग्रहण करेगा।

## अंधेरे का रोना न रोएँ

हमारे द्वारा गलत न हो, इसके लिए हम सजग रहें। जो गलत हुआ उसके परिणामों को भुगतने का साहस रखें। गलती या बदनियती के प्रति सजग-सावचेत रहकर ही हम उससे बच सकते हैं। हो चुकी गलती के लिए रोते न फिरें। स्वयं की सोच और बुद्धि को सकारात्मक और रचनात्मक बनाने की कोशिश करें। अंधेरे का रोना रोने से जीवन में प्रकाश की किरण नहीं उतरती, लेकिन सद्गुणों का प्रकाश आत्मसात हो जाए, तो दुर्गुणों का तमस् अपने आप नेस्तनाबूद हो जाता है।

अंधकार को दूर करने का सीधा-सा सूत्र है—जीवन में दो दीप जलाएँ। हम नकारात्मक सोच और नकारात्मक दृष्टि से मुक्त हों। जीवन में चाहे सोच हो या स्वप्न, सब कुछ सकारात्मक बने। हम यह न देखें कि गुलाब में भी काँटें हैं, वरन् सोच और दृष्टि यह रहे कि काँटों में भी गुलाब है। गिलास को आधा खाली तो हर कोई कह देगा, हमारी विशालता और उदारता इसमें है कि हम उसके भरे हुए पहलू पर ध्यान दें, और प्रेम और मुस्कान से कहें—गिलास आधा भरा हुआ है। हमारी सोच और जीने की शैली में ही छिपा है जीवन की हर सफलता का राज। बस, आवश्यकता केवल इस बात की है कि वह सकारात्मक हो। वस्तुतः यही है जीने की कला और यही है उसका गुर।



# स्वस्थ मन से करें दिन की शुरुआत

---

योजनाबद्ध तरीके से कार्यों को सम्पादित करने वाला  
सात दिन के कार्यों को एक दिन में निपटा लेगा ।

---

**मनुष्य** की जितनी सजगता अपनी संतान के विकास के प्रति होती है, उतनी ही अपने स्वयं के विकास के प्रति भी होनी चाहिए। मनुष्य की यह प्रवृत्ति है कि वह औरों के प्रति अपने को बेहतर देखना चाहता है। ऐसा होना अपने आप में एक शुभ संकेत है। इसका यह अर्थ नहीं कि व्यक्ति स्वयं आत्मविस्मृति के दौर से गुजरे और स्वयं अपनी ही उपेक्षा कर बैठे।

और लोगों का जीवन बेहतर हो, यह सजगता मंगलकारी है, किंतु स्वयं के जीवन को बेहतर बनाने का दायित्व स्वयं व्यक्ति पर ही आता है। और लोग सुधरे, औरों का हमारे प्रति सौम्य व्यवहार हो, यह अपेक्षा वांछनीय है, किन्तु ध्यान रखें जैसी अपेक्षा हम औरों से करते हैं, वैसी वे हमसे भी चाहते हैं। औरों से सौम्य व्यवहार की अपेक्षा रखने के लिए स्वयं का तदनु रूप होना अनिवार्य है।

## आए आम हवा में बदलाव

हम जरा अपने जीवन पर ध्यान दें, हम इस बात से आश्चर्यचकित हो उठेंगे कि हममें अभी तक वह योग्यता और पात्रता नहीं है कि अन्य लोग हमारे प्रति आदर-समादर पूर्ण व्यवहार करें। निश्चित ही हम शांत हैं, लेकिन तभी तक जब तक हमारे साथ कोई

शांतिपूर्ण व्यवहार करे। क्या किसी की कटु बात को सुनने की, पचाने की क्षमता और समता हममें है? यों तो हर व्यक्ति ईमानदार ही होता है, लेकिन इससे भी बड़ी सच्चाई यह है कि व्यक्ति तभी तक ईमानदार रहता है, जब तक कि उसे बेईमानी करने का मौका नहीं मिलता। जो रिश्तों और प्रलोभन से प्रेरित होकर अपने कर्तव्य-पथ से विचलित नहीं होता, वही व्यक्ति प्रामाणिक और नैतिक निष्ठाशील कहला सकता है।

पहले जमाने में एक पतिव्रत या एक पत्नीव्रत का महत्व रहता था। आज स्थिति यह है कि पत्नी के गुजर जाने या तलाक ले लिये जाने पर पिता अपनी पुत्री के लिए झट से अन्य पति की तलाश शुरू कर देता है। यही बात पुरुषों के लिए भी देखी जाती है। अब शील की अर्थवत्ता तभी तक रहती है, जब तक युगल एक-दूसरे के मुआफिक रहता है। थोड़ा-सा मुखालिफ़ होते ही किसी तीसरे की तलाश शुरू हो जाती है।

यह कितने बड़े विस्मय की बात है कि इतने विकासशील विश्व में कितना अधिक स्वार्थ, आतंकवाद और भ्रष्टाचार पनपा है। यह सब कुछ एक ही दिन में शुरू नहीं हुआ है। क्रिया चाहे हास की हो या विकास की, प्रगति की हो या अवनति की, धीरे-धीरे ही घटित होती है। यद्यपि विश्व में शांति और एकता के, मैत्री और भाईचारा के, नैतिकता और प्रामाणिकता के स्वर सुनने को मिलते हैं, वैसे दृश्य भी देखने को मिलते हैं, किन्तु जब तक आम हवा में बदलाव नहीं आएगा, स्थितियाँ विकृत ही रहेंगी। आखिर कुछ दायित्व हम पर भी बनते हैं। विश्व के वातावरण को सौम्य और सौहार्दपूर्ण बनाने के लिए जरूरी है कि विश्व की हर इकाई इसके लिए सजग हो, समर्पित हो। विश्व आखिर व्यक्तियों की इकाइयों का ही समूह है। हर इकाई का स्वस्थ और सुमनस् होना विश्व के मंगल स्वरूप का आधारसूत्र है।

## सजगता, जीवन की व्यवस्था के प्रति

हमारी ओर से शुरुआत भले ही छोटी-सी ही क्यों न हो, पर छोटी-सी शुरुआत दृढ़ आत्मविश्वास के साथ की जाए, तो निश्चय ही आने वाला कल आतंक और उग्रवाद का नहीं, प्यार और अनुराग का होगा; स्वार्थ और विलास का नहीं, भाईचारा और विकास का होगा। इसके लिए हमें अपने हर छोटे-से-छोटे कृत्य के लिए सजग होना होगा। हमारे द्वारा संपादित होने वाले छोटे-मोटे रचनात्मक कार्य ही आने वाले कल के इतिहास की स्वर्णिम रेखाएँ बन सकती हैं।

आखिर हर व्यक्ति अपने हर नये दिन की शुरुआत किसी-न-किसी कार्य से ही

करता है। क्या हम यह देखने और सोचने का कष्ट करेंगे कि वह कार्य क्या है और कैसा है? हमारे उस कार्य की शुरुआत स्फूर्त हृदय के साथ हो रही है या मुर्दा मन के साथ? हम विश्वास और निष्ठा के साथ कार्य के प्रति मुखातिब हो रहे हैं या प्रमाद और असफल भावना के साथ। ओह, व्यक्ति अपने किसी भी कार्य को व्यर्थ न समझे। दुनिया का हर कार्य अपने आप में श्रेष्ठ होता है, महत्व केवल इसी बात का है कि हम उसे किस होशहवास के साथ शुरू और पूरा करते हैं।

## बूँदें ला सकती हैं सैलाब

कई मर्तबा व्यक्ति की एक छोटी-सी कल्पना किसी नये आविष्कार का सूत्रधार बन जाया करती है। उसका छोटा-सा नज़र आने वाला चिंतन उसके घर-परिवार की दिशा बदल देता है। उसका कोई एक छोटा-सा कृत्य इतिहास की अमर कृति बन जाया करता है और उसका रचनात्मक जीवन धरती को स्वर्ग जैसा स्वरूप प्रदान करने में आधार भूमिका हो जाया करता है। इस स्थिति को समझने के बाद भी क्या हम अपने छोटे-से चिंतन, कार्यकलाप और अपनी रोजमर्रा की ज़िंदगी के प्रति सजग नहीं होंगे?

याद रखो, बादलों से बरसने वाली बूँदें भले ही छोटी-सी नज़र आएँ, किंतु ये छोटी-सी नज़र आने वाली बूँदें ही बहुधा बाढ़ का रूप ले लिया करती हैं। आखिर दुनिया की कोई भी कितनी भी बड़ी नदी क्यों न हो, अपने उद्गम-स्थल पर तो पानी की एक पतली धार भर होती है। जिस एक पेड़ से लाखों तीलियाँ बनती हैं, अगर उनमें से कोई एक तीली आग पकड़ ले, तो वह आग का इतना विराट रूप ले सकती है कि लाखों पेड़ों को जलाने में वह अकेली समर्थ हो जाती है।

क्या कोई बीते कल को यह विश्वास करता था कि किसी अर्द्धनग्न गांधी की अहिंसा भारत जैसे किसी विशाल राष्ट्र को आज़ाद करने में कोई अहम भूमिका निभा सकती है? नेलसन मंडेला की रक्तहीन क्रांति भले ही उसे बरसों जेल में रहने के लिए विवश करे, लेकिन दृढ़ आत्मविश्वास और लक्ष्य के प्रति प्रतिबद्धता अन्ततः मंडेला को राष्ट्रपति के रूप में निर्वाचित करती है। क्या आप इन सब बातों को अपने आप में परिलक्षित होता देखना चाहते हैं?

व्यक्ति के भीतर आज जितनी जरूरत शिक्षा और ज्ञान की है, उससे कहीं ज्यादा निष्ठा और विश्वास की है। माना कि हर व्यक्ति विश्व का दारोमदार नहीं बन सकता, किंतु वह अपने स्वयं का तो नियंता हो ही सकता है। माना कि आकाश को मापने के



लिए प्रकृति ने हमें पंख नहीं दिये हैं, किंतु हाँ, वे दो पाँव जरूर दिये हैं, जिनके बूते हम कुछ पर्वतों को तो पार कर ही सकते हैं, बाधाओं को तो लाँघ ही सकते हैं, छोटे पैमाने पर ही सही, नये आदर और आदर्श की उपस्थापना कर ही सकते हैं ।

## दिन की सुव्यवस्थित शुरुआत

स्वस्थ और सुंदर जीवन का स्वामी होने के लिए हमें इस बात पर गौर करना चाहिए कि हम हर नये दिन का श्रीगणेश किस रूप में करते हैं । हालांकि कहने में यह बात बहुत छोटी-सी होगी कि आप अपनी सुबह की नींद के खुलते ही अपने आप में क्या सोचते और देखते हैं, पर इस बात में बहुत दम है । कहीं ऐसा तो नहीं कि हमारी अलसुबह सुस्ती और उदासी से भरी हुई हो । अगर ऐसा है तो मानकर चलें कि आपका पूरा दिन सुस्त और निराशा से भरा होगा । यदि आप सुबह आँख खुलते ही अपने आप में विश्वास और प्रसन्नता का संचार करें, तो इस बात को देखकर चमत्कृत हो उठोगे कि आपका पूरा दिन कितना अधिक मधुर और आह्लादपूर्ण रहा ।

आप अपने आप में एक प्रयोग करके देखें । सुबह पौ फटते ही आप निद्रा का त्याग कर दीजिए । आँख खुलते ही केवल दो मिनट के लिए ही सही गहरी साँसें लें और अपने तन-मन में विश्वास और माधुर्य का संचार करें । स्वस्थ और प्रसन्न मन के साथ जब हम अपने शरीर से रू-ब-रू होंगे तो शरीर भी मन जितना ही स्वस्थ और प्रसन्न हो उठेगा और इस तरह से हमारा हर नया दिन हमारे लिए एक नया अनमोल उपहार होगा ।

सुबह जगने के बाद हमें अपने घर की चारदीवारी में लगे पौधों के पास जाकर या कमरे की खिड़की से बाहर झाँककर कुछ अच्छी-प्यारी भावभीनी लम्बी-गहरी साँसें लेनी चाहिए । शरीर को निर्मल करने के लिए शौच-क्रिया से अवश्य निवृत्त होना चाहिए । तन-मन की स्वस्थता के लिए थोड़े गुनगुने पानी से नहाएँ, स्वच्छ-धुले ढीले कपड़े पहनें, थोड़ा योगासन करें, चित्त की स्वस्थता और स्वच्छता के लिए ध्यान करें । हमें सुबह का अल्पाहार लेने से पहले किसी कागज पर उन सारे कार्यों की योजनाबद्ध सूची तैयार कर लेनी चाहिए, जो कि हमें आज दिनभर में संपादित करने हैं । इस तरह से हमारे हर दिन की एक सुव्यवस्थित शुरुआत होगी । योजनाबद्ध तरीके से अपने हर दिन की शुरुआत करने वाला एक ही दिन में पचासों कार्यों निपटा लेगा ।

जो अपने जीवन के प्रति व्यवस्थित दृष्टिकोण नहीं रखता, उसका हर दिन और

हर कार्य अव्यवस्थित होता है। योजनाबद्ध और व्यवस्थित रूप से कार्यों को संपादित करने वाला सात दिन के कार्यों को एक दिन में पूरा कर सकता है। जिसके जीवन में कोई व्यवस्था नहीं, वह एक दिन के कार्यों को सात दिन में निपटा सके, संभव नहीं।

## हर कृत्य ईश्वर की पूजा

व्यक्ति अपने किसी भी कृत्य को छोटा न समझे। वह अपने हर कृत्य को अपने लिए ईश्वर की पूजा माने, आनंद-भाव से कार्य करोगे तो वह कार्य आपके लिए मुक्ति का प्रथम द्वार बन जाएगा और रोते-झींकते बोझिल मन से कार्य करोगे तो वह कार्य ही हमारे लिए हमारे जीवन के बंधन की बेड़ी बन जाएगा। हम अपने कार्यों को इस तरह से संपादित करें कि हमारा हर कर्म परमात्मा की प्रार्थना और आराधना हो जाए, हमारे कृत्य हमारा कर्मयोग बन जाए। कार्य चाहे व्यवसाय का हो या घर-परिवार का, समाज का हो या राष्ट्र का—हम अपने हर कृत्य को अपनी ओर से समर्पित किया जाने वाला पुष्प ही समझें और उसी रूप में उसे संपादित करें।

सांझ को जब घर लौटें, तो अपने घर के छोटे-बड़े हर सदस्य से प्रेमपूर्वक मिलें। संभव है हम दिन भर के कार्यकलापों से थके हुए घर लौटें हों, पर निश्चय ही घर में पीछे रहने वाले सदस्य हमारे लिए प्रतिपल चिंतित रहे हैं, हमारा मंगल चाहते रहे हैं और हमारी कुशल वापसी की प्रार्थना करते रहे हैं। हम अपनी बोझिलता का गुस्सा कभी घर के सदस्यों पर न निकालें, क्योंकि वे हमारे हितैषी, हमारे सुख-दुःख के सहभागी और हमारे लिए प्रतीक्षारत रहे हैं। परिवार के प्रति अपने दायित्वों को निभाकर हम धन्य बनेंगे और परिवार का प्रेम पाकर भी। ध्यान रखें, परिवार को हमारी सख्त जरूरत है। हम परिवार में परिवार के लिए ऐसे जीएँ कि स्वयं परमात्मा की प्रतिमा कहला सकें।

संध्याकाल का जब भोजन ग्रहण करें तो इतनी सजगता अवश्य रखें कि आपके सोने में और भोजन में इतना अंतराल अवश्य हो कि भोजन को पचने में दिक्कत न आए। अगर रात को काफी देर से सोते हैं, तो इस आदत को भी सुधारें। समय पर सोएँ और समय पर जागें; यथासमय ही भोजन करें और यथासमय ही अपने कार्यों को संपन्न करें। रात को सोएँ, तो ईश्वर को अपना जीवन समर्पित कर दें और सुबह उठें तो इस नये दिन की सौगात के लिए ईश्वर के प्रति कृतज्ञता से भर उठें। आप सचमुच प्रमुदित रहेंगे, हमारा जीवन हमारे लिए वरदान होगा, हम अपने लिए और दुनिया के लिए कुछ कर गुजर सकेंगे।



स्वस्थ मन से करें दिन की शुरुआत

# पेश आएँ शालीनता से

---

सबके साथ इस तरह पेश आएँ  
कि वे हम पर गौरव कर सकें

---

**जी**वन के अन्तर-रहस्यों को जानने की जिज्ञासा से एक युवक किसी ज़ेन मास्टर के पास पहुँचा। उसने ज़ेन मास्टर की सराय का दरवाजा तेजी से खोला और अपने जूतों को बेतरतीबी से एक ओर धकेल दिया। युवक ज़ेन मास्टर का अभिवादन करने के लिए जैसे ही झुका, मास्टर ने कहा, 'ठहरो। मुझे प्रणाम करने से पहले उस दरवाजे और जूते से क्षमा मांगकर आओ।'।

'जूते से क्षमा !' युवक चौंका। मास्टर ने कहा, 'जिसे सलीके से जूता और दरवाजा तक खोलना नहीं आता, वह आत्मज्ञान की शिक्षा का पात्र कैसे हो पाएगा ?'

युवक को जीवन की समझ मिल गई। उसने ज़ेन मास्टर के समक्ष अपने कान पकड़े और जूतों से क्षमा मांगी। ज़ेन मास्टर ने कहा, 'तुम जिस विनम्रता से अपने जूतों के सामने पेश आए हो, उसी विनम्रता और शालीनता से अपने जीवन के सामने पेश आओ, तुम्हारे समक्ष जीवन के रहस्य स्वतः उद्घाटित होते चले जाएँगे।

यह छोटी-सी घटना सहज प्रेरणादायी है कि छोटी-छोटी बातें जीवन के लिए कितना महत्व रखती हैं और उनसे किस तरह जीवन प्रेरित प्रभावित होता है।

हमारा आचार और व्यवहार ही हमारे व्यक्तित्व की तस्वीर होती है। शिष्ट

व्यवहार हमारे शिष्ट व्यक्तित्व को उजागर करता है, वहीं अशिष्ट व्यवहार हमारे अशिष्ट व्यक्तित्व को । वह व्यक्ति पढ़ा-लिखा होते हुए भी अपरिपक्व ही कहलाएगा, जो औरों के साथ शालीनता से पेश नहीं आता । एम.ए. की उपाधि प्राप्त कर लेने भर से व्यक्ति एम.ए.एन. (मैन/मनुष्य) का गौरव हासिल नहीं कर सकता । नैतिक और व्यावहारिक शिष्टता ही व्यक्ति को उसकी विशिष्टता और यशस्विता प्रदान करती है

## कुलीनता की पहचान आचार-व्यवहार से

सबके साथ शिष्ट और विनम्र व्यवहार करना ही व्यक्ति की शालीनता है । यहाँ तक कि हमें अपने कर्मचारी और पालतू कुत्ते के सामने भी सलीके से पेश आना चाहिए । स्वयं के जीवन को सुव्यवस्थित और अनुशासित ढंग से जीना, वहीं औरों के मान-सम्मान और शिष्टाचार का ध्यान रखना व्यक्ति की विशेषता है । पुष्प वही ग्राह्य होता है, जो पुष्पित और सुवासित होता है ।

हमारी ओर से ऐसा कोई व्यवहार नहीं होना चाहिए, जिससे किसी के हृदय को आघात पहुँचे । हमारी कुलीनता की पहचान हमारे आचार-व्यवहार से ही होती है । व्यक्ति जन्म से नहीं, अपने कर्म, गुण और व्यवहार से ही स्वयं को और अपने कुल को गौरवान्वित करता है ।

जीवन में सफलता पाने का पहला गुर ही सबके साथ शालीन, विनम्र और मधुर व्यवहार करना है । किसी के द्वारा अशिष्ट बरताव किए जाने पर भी स्वयं पर संयम रखना और अपनी शिष्टता तथा शालीनता को बरकरार रखना जीवन की सबसे बड़ी सफलताओं में एक है ।

क्या हम इस बात पर ध्यान देंगे कि हमारी ओर से होने वाला वाणी-व्यवहार हमें सम्मानित कर रहा है या उपेक्षित ? कहीं ऐसा तो नहीं कि हम अमर्यादित बोलते हों ? आत्म-प्रशंसा और परनिंदा में रस लेते हों ! अपशब्द या व्यंग्य का उपयोग करते हों ! मिथ्या अहं के चलते औरों की उपेक्षा कर बैठते हों या क्रोध के आवेश में अपनी और दूसरे की मर्यादाओं को खंडित कर बैठते हों ! अथवा शरीर के द्वारा विकृत मुख-मुद्रा, आँख मारना, घूरना, छेड़खानी करना, दाँत किटकिटाना जैसी दुर्वृत्तियों को दुहराते हों !

व्यवहार चाहे वाणीगत हो या चेष्टागत अथवा कर्मजन्य, उस पर संयम, सदाचार और सौम्यता का अवलेह अवश्य होना चाहिए ।

## शिष्टता से बढ़कर संजीवन नहीं

सदाचार तो अमृत है। सादगी और सदाचार से बढ़कर कोई पुण्य नहीं और प्रपंच तथा दुराचार से बढ़कर कोई पाप नहीं। शिष्टता से बढ़कर कोई संजीवन नहीं और अशिष्टता से बढ़कर कोई मृत्यु नहीं। दूसरों के द्वारा अशिष्ट और ओछा व्यवहार किए जाने पर भी स्वयं पर आत्म-नियन्त्रण रखना और अपनी ओर से सदा सबके प्रति सरलता, प्रसन्नता और मधुरता से पेश आना जीवन की आदर्श साधना है।

संस्कार व्यक्ति के आचार-व्यवहार को प्रभावित करते हैं। व्यक्ति के जैसे संस्कार होंगे, उसका जीना-मरना भी वैसा ही होगा। किसी ने कहा, 'तुमने चोरी की है, तो उसका दंड तो मिलेगा ही।' जवाब मिला, 'दंड केवल मुझे ही नहीं, मेरे अभिभावकों को भी दिया जाए, जिन्होंने मेरी चोरी की आदत को जानते हुए भी मुझे इससे दूर रखने का प्रयत्न नहीं किया।'।

एक महानुभाव ने किसी बच्ची से पूछा, 'तुम सबके साथ इतनी शालीनता और सम्मान से कैसे पेश आते हो?' जवाब मिला, 'इसमें कोई विशेष बात नहीं है। मेरे घर में सभी एक-दूसरे के साथ ऐसे ही पेश आते हैं।'।

## घर-परिवार का सीधा असर

माता-पिता और घर-परिवार के सदस्यों के बोल-बस्ताव का बच्चे पर सीधा असर पड़ता है। अपनी संतान को श्रेष्ठ संस्कारों का स्वामी बनाने के लिए हमें स्वयं को पहले उन्हें आत्मसात करना होगा। हमें घर का वातावरण ही ऐसा रखना चाहिए कि घर के सभी लोग अनायास ही सादगी, स्वच्छता और शालीनता को आचरित करते रहें। एक संस्कारित बालक का निर्माण सौ विद्यालयों को बनाने के समान है।

बालक का जीवन तो उस गमले के समान है, जिसमें जैसे विचार, व्यवहार और संस्कार के बीज बो दिए जाएंगे, पौधा और फल-फूल वैसे ही विकसित होंगे। माता-पिता को अपनी संतान के प्रति एक जीवन-माली और जीवन-गुरु का दायित्व वहन करना चाहिए। जीवन को हम उस बर्तन की तरह जानें, जिस पर जो चिह्न बना दिया जाता है, वह सदा बना हुआ रहता है। फिर क्यों न हम जीवन में वे मधुर संस्कार और आदर्श स्वीकार करें, जिसका प्रभाव हमारे जीवन-भर बना रहे।

## सन्दर्भ : शिक्षा, संगति और संस्कार का

हमारे आचार-विचार और जीवन-शैली को प्रभावित करने वाला एक और जो सबसे बड़ा घटक है, वह है मित्र-मंडली। यदि किसी के बारे में यह जानना हो कि वह कैसा हो, तो मात्र इतना पता लगा लें कि वह किस स्तर के लोगों के बीच उठता-बैठता है। संगत स्वतः रंगत दिखा देता है। हमें मित्र बनाते वक्त उतनी ही सतर्कता बरतनी चाहिए, जितनी वर/वधु की तलाश के लिए श्रम और सावधानी बरतनी पड़ती है।

संगति का असर तो आखिर आएगा ही। गोरे के पास काला बैठेगा, तो भले ही उसका रूप न चढ़े, पर उसकी अक्ल तो आएगी ही आएगी। काजल की कोठरी में जाएँगे, तो दामन में दाग तो लगेगा ही। सीधी-सी बात है कि हींग की पोटली जेब में रखोगे, तो हींग की ही गंध आएगी, वहीं चन्दन का तिलक लगाओगे, तो चन्दन की सुवास से स्वयं को और सबको आह्लादित करोगे। हमारे आचार-विचार, बोल-बरताव, आहार-विहार और आदत-संस्कार भी वैसे ही बन जाते हैं, जिस तरह की आदत वालों के साथ उठते-बैठते हैं। आखिर, कीचड़ में पाँव रखकर गुलाब की सुगंध नहीं पाई जा सकती।

‘जैसा खाए अन्न, वैसा रहे मन’ इस चिरपरिचित उक्ति पर ध्यान दें, तो बुद्धिमान लोगों को चाहिए कि वे भोजन की सात्विकता पर भी सजगता बरतें। शिक्षा वह हो, जो हमें जीवन-दृष्टि दे, जीने की कला सिखाए। व्यवसाय भी ऐसा हो, जो शुद्ध आजीविका प्रदान करे।

## ऐसे जीएँ जीवन अपना

बेहतर होगा हम सुबह सूर्योदय से पहले जागें। स्वयं में ऊर्जा, उत्साह और आत्मविश्वास का संचार करें। माता-पिता को प्रणाम करें। शौच-क्रिया से निवृत्त हों, स्वच्छ और खुली हवा में टहलने के लिए जाएँ। टहलना और व्यायाम करना शरीर के लिए वैसे ही लाभप्रद है, जैसे बड़ई के द्वारा औजार में धार करना। टहलते समय दीर्घ श्वास लें। नाखून न बढ़ाएँ। प्रतिदिन स्नान करें। सप्ताह में दो बार शरीर पर तेल की मसाज करें। घर में कुछ गमले लगाएँ, व्यर्थ की चिंता न पालें। मन की शान्ति और निर्मलता के लिए ध्यान अवश्य करें और सदा ईश्वर तथा प्रकृति के लिए धन्यवाद से भरे रहें। स्वाध्याय हमारी बुद्धि को प्रखर और सक्रिय बनाए रखने में सहयोग करेगा।

हम स्वाध्याय अवश्य करें ।

मौन एवं शान्तिपूर्वक भोजन करें । जूठन न छोड़ें । शुद्ध भोजन करें । बाजारू खाद्य पदार्थों से परहेज रखें । हाथ धोने के लिए गिलास भर पानी और पोंछने के लिए तोलिया, भोजन के समय साथ लेकर बैठें । ध्यान रखें दिन में अनावश्यक सोने की आदत न डालें ।

घर से बाहर जाते समय बड़ों का अभिवादन और बच्चों को प्यार देकर जाएँ । अपनी दिनचर्या और आजीविका को बड़े उत्साह से सम्पादित करें । जीवन के हर कार्य और कर्तव्य के लिए सन्नद्ध रहें । ऐसी बातों और लोगों से परहेज रखें जो हमारे लिए अशान्ति का निमित्त बनते हों । किसी कार्य में असफल हो जाने पर खिन्न और दुःखी होने की बजाय उन त्रुटियों और कारणों को तलाशें, जिनके चलते हम सफल होने से चूक गए । असफल भला कौन नहीं होता ! सच्चा सफल वही है जो हर दिन और कार्य की शुरुआत सदा नये उत्साह, उमंग और आत्मविश्वास के साथ करता है ।

ध्यान रखें हम कभी किसी बुरे व्यसन से न घिर जाएँ । देर रात तक, घर से बाहर न रहें, घर वालों को आपकी प्रतीक्षा है । समय पर जाएँ, समय पर आएँ । घर आने पर परिवार की हँसी-खुशी में ऐसे घुल-मिल जाएँ मानो बूँद सागर में समा गई हो ।

## नैतिक शिक्षा के पचीस सूत्र

हम सहज, सौम्य और मधुर जीवन का संकल्प लें । अपने दैनिक जीवन में निम्न बातों का अमल करें—

१. सूर्योदय से पहले उठकर प्राणों में ऊर्जा और आत्मविश्वास का संचार कीजिए; माता-पिता को प्रणाम कर उनके आशीर्वाद लीजिए ।
२. दूसरों के द्वारा किए जाने वाले प्रणाम और अभिवादन को आदरपूर्वक स्वीकार कीजिए ।
३. घर को स्वच्छ और सुन्दर रखिए । घर की छोटी-बड़ी—सब वस्तुएँ निर्धारित स्थान पर रखिए ।
४. घर के कामकाज में सहयोग कीजिए; खाने की वस्तु पहले छोटों को दीजिए

५. स्वच्छ धुले हुए वस्त्र पहनिए; अमर्यादित पहनावे से परहेज रखिए ।
६. खाद्य पदार्थों को ढककर रखिए; ईंधन और पानी को व्यर्थ न जाने दीजिए ।
७. घर आए अतिथि का प्रसन्न हृदय से सत्कार कीजिए; लौटते समय दरवाजे तक पहुँचाकर विदा दीजिए ।
८. घर में शान्ति बनाए रखने के लिए स्वयं शान्त रहिए; अशान्ति का वातावरण बन जाने पर घर के सदस्यों को प्रेमपूर्वक समझाइये ।
९. घर की गोपनीय बातों को उजागर मत कीजिए; दूसरे की गुप्त बातों को जानने का प्रयत्न मत कीजिए ।
१०. सबके साथ नम्रता और मधुरतापूर्वक पेश आइये । निन्दा, व्यंग्य और हल्की भाषा का उपयोग करने से परहेज रखिए ।
११. मनोयोगपूर्वक अध्ययन कीजिए; पढ़ते समय पढ़ने पर ही ध्यान दीजिए ।
१२. कही हुई बात को 'वचन' समझिए; उसे पूरा करने की पूरी कोशिश कीजिए ।
१३. सार्वजनिक कार्यक्रमों में सदा भाग लीजिए; किसी के धार्मिक विश्वासों की खिल्ली मत उड़ाइए ।
१४. हाथ-मुँह धोकर भोजन कीजिए; भोजन में नुक्ताचीनी मत निकालिए ।
१५. क्रोध के क्षणों में जवाब मत दीजिए; औरों की भूलों को क्षमा करने का सामर्थ्य रखिए ।
१६. सब धर्मों का सम्मान कीजिए । किसी धर्म में कोई अच्छी बात लगे, तो उसे ग्रहण कर लीजिए ।
१७. प्रतिदिन मधुर संगीत सुनिए, अच्छी कविता पढ़िए, सुन्दर चित्र निहारिए और हो सके तो सदा मधुर शब्द बोलिए ।
१८. असहाय और विपदाग्रस्त लोगों की सहायता कीजिए; स्वयं पर कष्ट आ जाए तो धैर्य और साहस से सामना कीजिए ।



१९. समय के पाबंद रहिए; आज के कार्य को आज ही पूरा करने का प्रयत्न कीजिए ।
  २०. बड़ों के सम्मान का ध्यान रखिए; उनकी मान-मर्यादा को निभाने की कोशिश कीजिए ।
  २१. कहीं जाएँ, तो अपनी सीमा और मर्यादा में रहिए; ध्यान रखिए कि आप वहाँ अतिथि हैं, मालिक नहीं ।
  २२. कर्मचारियों के साथ इस तरह पेश आइये कि वे आप पर सदा गौरव कर सकें ।
  २३. व्यसनों से ग्रस्त होकर औरों के दुखदर्द का कारण न बनिए; व्यसन-मुक्त स्वस्थ समाज की संरचना में सहयोग कीजिए ।
  २४. अपने राष्ट्र, धर्म और मातृभूमि पर गौरव कीजिए; उनकी प्रगति में सहयोग कीजिए ।
  २५. जीवन के हर पहलू के प्रति सदा सकारात्मक रहिए; ऐसे किसी भी कार्य से परहेज रखिए जिससे आपके परिवार, समाज या राष्ट्र को नीचा देखना पड़े ।
- ये हैं वे पचीस सूत्र, जो हर देश, क्षेत्र, काल में कारगर और कल्याणकारी हैं । हम स्वयं सुख-शालीनता से जीएँ और औरों के साथ सुख-शालीनता से पेश आएँ—सर्वसुख का सुकून पाने का यही स्वर्णिम मार्ग है ।



# पहचानें, समय की नजाकत

---

तुम समय के साथ चलो, समय तुम्हारे साथ चलेगा ।

---

**ह**मारी दृष्टि जब किसी के हाथ की कलाई पर पड़ती है या किसी के बैठकखाने की दीवार पर, तो सहजतया हमें टिक-टिक करती एक चीज नजर आ जाती है और वह है—घड़ी । घड़ी का आविष्कार सृष्टि की उस आदिकालीन व्यवस्था में ही हो चुका होगा, जब मनुष्य ने अपनी जीवन की घड़ियों का मूल्य समझा होगा । जीवन की निर्धारित घड़ियाँ होती हैं । कितनी घड़ियाँ आईं, कितनी बीतीं, कितनी आनी बाकी हैं, इस बात का लेखा-जोखा करने के लिए ही घड़ी का रूप ईजाद हुआ । विकास के क्रम में घड़ी के स्वरूप बदलते गये, लेकिन समय का जायजा लिया जा सके, ऐसी घड़ी किसी-न-किसी रूप में हर-हमेश रही है ।

जयपुर के जंतर-मंतर में ऐसी ही सांकेतिक घड़ियाँ बनी हुई हैं । उस पत्थर की घड़ी पर जब-जहाँ सूरज की धूप पड़ती है, तब दर्शक उतने बजने का संकेत जान लेता है । मूल्य घड़ी का नहीं, समय के गमन और आगमन का है । सुश्री हैलन केलर से जब पूछा गया कि आप रात और दिन का फर्क कैसे करती हैं, क्योंकि अंधे व्यक्ति के लिए न सूरज का दिन होता है और न चाँद की रात । उसने बताया कि उसे न केवल रात और दिन का भेद ज्ञात हो जाता है, अपितु हर घंटे की स्थिति भी मालूम हो जाती है । उसने जब पूछने वाले को यह बताया कि इस समय इतने बजे होंगे तो प्रश्नकर्ता का चकित होना स्वाभाविक था ।

हैलन केलर ने बताया कि दिन में होने वाली लोगों की चहल-पहल दिन का अहसास करवाती है, वहीं वातावरण की शांति रात का। मुर्गी की कुकड़ू-कूं भोर का, चिड़ियों की चहचहाट सूर्योदय का, गर्मी की तपन दोपहर का, घर लौटती गायों के रंभाने से सांझ का और हवा में आने वाली शीतलता के अहसास से रात का बोध होता है। अंधा व्यक्ति भी समय की सूचना पा लेता है। ये भांति-भांति के अहसास अपने आप में किसी घड़ी के ही रूप हैं।

घड़ी और समय—दोनों एक-दूसरे के सूचक और पूरक हैं। घड़ी समय का अहसास कराती है और समय घड़ी का। हम जब-तब दिन में या रात में हाथ पर लगी घड़ी की ओर नजर डालते हैं, तो क्या हमें अहसास होता है कि समय बीत रहा है? समय का कितना मूल्य है? काम को कल पर टालते रहने के क्या परिणाम होते हैं? समय चुक जाने के बाद पछताना पड़ता है।

## समय : सबका सूत्रधार

मेरे देखे, समय जीवन का सहचर है। न केवल जीवन का, वरन् जगत का भी और जगत की सारी व्यवस्थाओं का भी। सृष्टि के नियमन और संचालन में जितनी भूमिका प्रकृति और ईश्वर की मानी जाती है, समय की भूमिका उससे उन्नीस नहीं है। ईश्वर तो अज्ञात भी है, किन्तु समय तो रोजमर्रा के जीवन में होने वाली उठापटक से ज्ञात भी हो जाता है। वक्त किसी को सम्राट बनाते देर नहीं लगाता, तो किसी को अपना गुलाम बनाने में भी वक्त नहीं गंवाता। सारी दुनिया समय का ही खेल है। कोई अमीर है तब भी और कोई गरीब है तब भी, कोई लाभ में है तब भी और कोई हानि में चल रहा है तब भी। सब कुछ समय की ही लीला है। उसकी लीला किसी को लीला-लहर भी कर सकती है और किसी को लील भी सकती है। समय की महिमा तो देखो कि वह किसी अछूत अनचिन्हे व्यक्ति को राष्ट्रपति बना देता है और किसी राष्ट्रपति को फाँसी पर चढ़ा देता है। वह किसी के लिए जन्म हो जाता है, तो किसी के लिए मृत्यु; किसी के लिए सुख बन जाता है, तो किसी के लिए संत्रास। समय सबकी परछाई है। समय ही सबके सिर का मुकुट है और समय ही सबके गले पर लटकी तलवार।

समय का स्वरूप परिवर्तनशील है। वह किसी का रंग भी बदल देता है और किसी के बदलते रंग को देखकर अपना रंग भी बदल लेता है। धरती के इतिहास में अब तक जितने विजय-पराजय के युद्ध हुए; उत्थान हुआ कि पतन, समय सबका द्रष्टा रहा और सबका सूत्रधार भी। धरती पर अब तक जो कुछ हुआ, वह सब समय का

भाग्य था । जिसने भी समय से टक्कर लेनी चाही, समय ने उसे धूल-धूसरित किया, जिसने समय से मैत्री साधी, समय ने उसे सदा संभाला ।

समय सब कुछ बदल देता है, पर समय स्वयं नहीं बदलता है । वह जीने-मरने की एक मिनट की भी छूट नहीं दे सकता । जिसे जीवन देना होता है, वह हर हाल में उसका संरक्षण करता है, 'जाको राखे साइयां, मार सके न कोय' । जिसे वह उठाना चाहता है, उसे वह कब-किस रूप में उठा लेगा, पता नहीं । आदमी के सौ प्रबन्ध धरे रह जाते हैं । काल उसका 'काल' बनकर उसे उठा ही ले जाता है । समय, मान गये मृत्यु भी तेरा ही एक रूप है ।

## साधें, समय संग मैत्री

लोग हाथ पर घड़ी लगाते हैं, लेकिन इसके बावजूद समय के स्वरूप और मूल्य को ध्यान नहीं दे पाते । कुछ लोग तो ऐसे नाकामे बैठे रहते हैं कि उनके लिए समय काटना मुश्किल हो जाता है । किसी घर बैठे बूढ़े से पूछो कि क्या कर रहे हो ? तो जवाब मिलेगा—समय काट रहे हैं । भला समय को कोई काटा जाता है ! अगर काटेगा तो समय ही काटेगा । समय ही हमें काटता है, हम समय को नहीं । समय के प्रति सकारात्मक और रचनात्मक न होने के कारण ही समय ने आपको बूढ़ा बना दिया है ।

हम यदि कुछ कर गुजरने की अन्तर्निष्ठा से भर उठें, तो आप ताज्जुब करोगे कि स्वयं समय ने भी हमारा सहायक बनना शुरू कर दिया है । समय का न अच्छा रूप होता है, न बुरा । हम संकल्प, समर्पण, निष्ठा और दृढ़ इच्छा-शक्ति के साथ समय का उपयोग करें, समय हमारे द्वार पर सौभाग्य के फूल न बिखेर दे, तो मुझसे कहना । हम समय से लड़े नहीं । धार के उल्टे आखिर कितनी देर तैर सकेंगे ! समय के साथ एकता और मैत्री साधें ।

समय जो कुछ करे, भला या बुरा, बिना किसी ननुनच के उसे स्वीकार कर लो, यह सोचकर कि समय ने जो कुछ किया है, उसमें किसी-न-किसी तरह का मेरा हित समझकर ही किया है । जो कुछ मेरे साथ हुआ, वह होनी का ही हिसाब-किताब था । होनी को यदि सहजता से स्वीकार कर लो, तो होनी तुम्हें और सुन्दर बनाएगी । होनी को अनहोनी मान बैठे, तो दुःखी होने का इससे बड़ा आधार और कोई न होगा । इसलिए जीवन में सदा इस बात की सजगता रखें कि जीवन में जो हो, उसका होना सुन्दर हो; जीवन में जो कुछ न हो, उसका न होना भी हमारी ओर से सुन्दर हो । समय किसी को

दुःखी नहीं करता । वह तो मात्र कसौटी कसता है आदमी के आदमियत की, उसके ईमान और निष्ठा-मूल्यों की । तुम चाहो तो समय की हर इच्छा को मान देकर अपने आपको सुखी बना सकते हो, वरना हारा जुआरी तो इधर-उधर की उठा-पटक ही करता रहेगा ।

जीवन में कभी किसी तरह का नुकसान हो जाए तो चिंता न करें । उसे भी सहजता से स्वीकार कर लें । लाखों-करोड़ों का मुनाफा कमाकर घमंडी न हो जाएँ । उसे भी बड़ी सहजता से लें । समय एक दिन हमारी चिंता भी दूर कर देगा, तो हमारा घमंड भी धराशायी । जो हुआ अच्छा हुआ; जो न हुआ, वह होने से भी अच्छा हुआ । जो होता है, अच्छे के लिए ही होता है । जो होता है, होने के लिए ही होता है । यदि हम यह सोच रखेंगे, तो हम जीवन के हर उतार-चढ़ाव को पार कर सकेंगे, समय की प्रतिकूलताओं पर भी आत्मविजय प्राप्त कर सकेंगे ।

## हर अवसर, समय की सौगात

समय हमारे लिए अवसर बनकर आता है । हम जीवन के किसी भी अवसर को न चूकें । हम अपने हर कार्य को पूरी निष्ठा और लगन के साथ करें । अवसर छोटे से छोटा भी क्यों न हो, अवसर को हम समय की सौगात समझें । जैसे हम किसी उपहार या पुरस्कार को बाकायदा आभार और अहोभाव के साथ स्वीकार करते हैं, समय के साथ भी हमारा ऐसा ही व्यवहार हो । हम उसके द्वारा दिये जाने वाले हर अवसर को बाअदब स्वीकार करें और अपनी पूरी लगन के साथ उसका बाकायदा उपयोग करें । सुस्त और प्रमादी लोग समय के अवसरों का उपयोग नहीं कर पाते । जो अपने जीवन में छोटे अवसरों को सफलता का जामा नहीं पहना सकता, वह किसी बड़े अवसर को पाने का उत्तराधिकारी नहीं होता । आलसी लोगों का नाम समय के शिलालेखों में अपाहिजों के रूप में किया जाता है ।

समय के साथ मैत्री साधने वालों को चाहिए कि वे समय के पाबंद रहें । जिसके जीवन में समय का अनुशासन नहीं है, वह किसी भी तरह का शासन करने के योग्य होता ही नहीं है । हम भारतवासियों की सबसे बड़ी कमी यह है कि हम समय के प्रति सबसे ज्यादा सुस्त और लापरवाह होते हैं । हम पश्चिम का आँख मूँदकर अनुकरण कर लेते हैं, पर वहाँ की समयबद्धता को आंशिक रूप में भी स्वीकार नहीं कर पाते । हमारे देश की ऊँची संस्कृति का सारे विश्व में निर्यात होना चाहिए, लेकिन वहाँ की 'समयबद्धता' को भारत में आयातित किया जाना चाहिए । भारत यदि समयबद्धता के सिद्धान्त को स्वीकार कर ले, तो भारत का मालिक भगवान को बनाने की जरूरत नहीं

पड़ेगी। समयबद्धता और प्रामाणिकता—केवल इन दो सूत्रों के आधार पर भारत का भाग्य बदला जा सकता है, इसका भविष्य स्वर्णिम बनाया जा सकता है।

यह कितनी बड़ी विडंबना है कि हम समय से नहीं चलते। रात में सोने की बात को लिया जाए, तो देर से सोते हैं और सुबह उठने की बात लें, तो समय गुजर जाने के बाद उठते हैं। लेट-लतीफी का प्रचलन ऐसा चल पड़ा है कि व्यक्ति अपने दफ्तर में भी देर से पहुँचता है, कोई मीटिंग हो, तो उसमें भी समय की पाबंदी नहीं होती, समारोह चाहे अच्छे से अच्छा क्यों न हो, समय पर शुरू नहीं होता। शादी में जाओ, तो बारात देर, स्टेशन जाओ, तो ट्रेन लेट। और तो और, हवाई जहाज भी लेट। यानी समय की कोई सही व्यवस्था ही नहीं। ध्यान रखें, जहाँ समय की पालना नहीं, उसके जीवन में कोई व्यवस्था नहीं होती। भला जो समय को नहीं निभा सकता, वह अपने धर्म और वचन को क्या निभाएगा !

## आज का कार्य आज हो

तुम समय के साथ चलो, समय तुम्हारा साथ निभाएगा; तुम समय की व्यवस्थाओं पर ध्यान दो, समय तुम्हारी व्यवस्थाओं पर ध्यान देगा; तुम समय का उपयोग करो, समय तुम्हारा उपयोग करवाएगा। समय मेरा मित्र है, मैं समय का मित्र हूँ। मैं और समय—दोनों अलग-अलग नहीं हैं। कायाएँ दोनों की अलग होंगी, प्राण दोनों के एक हैं। मैं समय की धार हूँ, समय मेरा सूत्रधार।

समय की प्रेरणा है : समय की नजाकत पहचानो। अपने किसी काम को कल पर मत टालो। जो अपने काम को कल पर टालते हैं, वे खुद टलते चले जाते हैं, जो अपने काम को आज संपादित करते हैं, वे समय का वर्तमान बन जाते हैं। हम न केवल आज के कार्य को आज करें, वरन् कल के कार्य को भी आज कर डालना संभावित हो, तो स्वयं की ओर से प्रयत्नशील रहने में कोई कमी न रहने दें। कल का काम आज हो और आज का काम अभी—इसे जीवन की सफलता का मूल मंत्र मानें। जो आज का उपयोग कर रहे हैं, विश्वास है वे कल का भी उपयोग करेंगे। जो आज ही अलसाये हैं, वे कल तरोताजा हो जाएँगे, उम्मीद नहीं है। हर दिन जीवन की यात्रा का एक दिन कम होता है। करने के लिए बहुत कुछ है। तुमसे कुछ करवाने के लिए ही समय ने तुम्हारा सृजन किया है।

आओ, हम धरती को स्वर्णिम बनाएँ। शिखर पर बैठा समय निरंतर हमें देख रहा है। वह देख रहा है सृष्टि के लिए कौन उपयोगी है और कौन आलसी-अवांछित।

तुम उठने को राजी हो, तो समय तुम्हारा सहयोग करने को तैयार है । समय की एक ही तो संप्रेरणा है—चरैवेति-चरैवेति । आज का नया सवेरा कितने प्यार से हमें कह रहा है—फिर से सजाएँ हम अपने सवेरे को, जीवन और जगत को । इस संकल्प के साथ कि शुभ करेंगे आज, अशुभ करेंगे कल । ‘शुभ’ को हम सदा करते जाएँगे; और अशुभ को कल पर टालते जाएँगे, कल पर, और किसी अगले दिन पर ।



# कोशिशों में छिपी कामयाबियाँ

---

कामयाब होने वाले कोई अलग काम नहीं करते,  
वे हर काम अलग तरीके से करते हैं।

---

**जी**वन प्राप्त करना ही जीवन की उपलब्धि नहीं है, वरन् जीवन में निरन्तर मूल्यवान् सफलताओं को अर्जित करना जीवन की उपलब्धि है। कोई व्यक्ति अपने जीवन में चाहे कितनी ही बार असफल क्यों न हुआ हो, हर नई सुबह मनुष्य को यही संदेश देती है—प्रयत्न एक बार और करो। असफल होना जीवन की कोई बड़ी विफलता नहीं है। हर असफलता सफलता का ही एक पड़ाव है। सफलता तो मंजिल है। हर किसी एक सफलता तक पहुँचने के लिए पहले व्यक्ति को सौ असफलताओं का सामना करना पड़ता है। सफलता उतनी ही मधुर होती है, जितनी हमने मुसीबतों का सामना करके उसे पाया है।

जीवन के जिस क्षेत्र में भी हम अपनी शक्ति का उपयोग करेंगे, उसकी स्थिति बिल्कुल सागर-मंथन जैसी होगी, पहले विष निकलेगा, फिर अमृत और नवरात्र। यह बात बड़ी गौरतलब है कि थॉमस एडिसन को बल्ब का आविष्कार करने से पहले दस हजार से अधिक बार असफलताओं का सामना करना पड़ा। उसकी हर असफलता अंधेरे में तीर-तुका थी, लेकिन दृढ़ आत्मविश्वास और इच्छा-शक्ति के बलबूते पर निराश होने की बजाय वह धैर्यपूर्वक हर असफलता को पचाता चला गया और जब उसे सफलता मिली, तो सारी दुनिया रोशनी से नहा उठी।



## विफलता मात्र पड़ाव है, मंजिल नहीं

जीवन की हर असफलता सफलता की ओर बढ़ने की प्रेरणा है। जो असफलता से निराश हो जाते हैं, वे सफलता के शिखर की ओर नहीं बढ़ पाते। हम अपनी हर असफलता को सफलता की मंजिल का एक पड़ाव भर समझें। जैसे मंजिल तक पहुँचने के लिए हर पड़ाव को पार करना होता है, सफलता को आत्मसात करने के लिए हमें विफलताओं का भी सामना करना होता है। सफलताएँ कोई घर बैठे ही नहीं आ जाती हैं, उसके लिए हमें निरन्तर सन्नद्ध और प्रतिबद्ध रहना होता है। संघर्ष और कठिन परिश्रम के बाद ही सफलता की सुखानुभूति हो सकती है। किसी भी सफलता को प्राप्त करने के लिए हमें जितनी अधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, सफलता का स्तर उतना ही श्रेष्ठ होता है। बगैर कोशिशों के कामयाबियाँ नहीं मिला करती और किसी शान्त समुद्र में नाविक कभी कुशल नहीं बन पाता।

## लफ्फाजी नहीं, कुछ ठोस करें

माना कि कुदरत सबके लिए आहार-पानी की व्यवस्था करती है, पर इसका मतलब यह नहीं कि शेर को गुफा में बैठे-बैठे ही भोजन मिल जाएगा या घोंसले में ही चिड़ियाओं के लिए चुगा-पानी टपक जाएगा। कभी आप किसी जन्तु को अपने दाना-पानी के लिए कोशिश करते हुए देखें, तो यह देखकर ताज्जुब कर उठेंगे कि उन्हें कितनी मेहनत करनी पड़ती है। माना कि कुदरत ने बीजों की व्यवस्था की होगी, पर यह तो भली-भाँति माली ही बता सकता है कि बीज में छिपे फल और फूल को निष्पादित करने के लिए उसे कितना श्रम करना पड़ा। जमीन ईश्वर की व्यवस्था है, किंतु खेतों में फसलों को लहलहाना मनुष्य के श्रम की सफलता है। मिट्टी और पहाड़ प्रकृति की देन है, परन्तु उससे बनने वाली ईंटों और खण्डों से किसी खूबसूरत इमारत का निर्माण करना मानवीय रचनाधर्मिता है। मनुष्य यदि किसी भी कार्य को करने के लिए सन्नद्ध हो जाए, उसे अपनी जवाबदारी मान ले, तो उसका प्रयास और पुरुषार्थ स्वतः सक्रिय हो जाएगा।

जो लोग कोरी बातें करते रहते हैं, इसके अलावा कुछ नहीं करते, उनकी बादशाहत केवल बातों से ही जुड़ी होती है। करने के नाम पर वे कंगाल होते हैं। महान लोग अपने संदेशों को वाणी के द्वारा कहने की बजाय अपने जीवन में आत्मसात करके ही प्रदर्शित करते हैं। दुल्लती केवल वे ही गधे मारा करते हैं, जो किसी भी प्रकार के भार का संवहन करने में असमर्थ होते हैं। अपने कंधों पर दायित्वों का वहन करने वाले न तो दुल्लती

मारते हैं और न ही हेकड़ी हाँकते हैं। वे जिदगी में कुछ करके दिखाने में ही विश्वास रखते हैं।

जीवन में श्रम और संघर्ष करने का क्षेत्र इतना व्यापक है कि व्यक्ति जीवन भर प्रयास और पुरुषार्थ करता रहे। व्यक्ति का हर कार्य उसकी नई ताजगी और गुणवत्ता का परिणाम लिये हुए हो। हमने जो कार्य कल किया, हम जीवन भर उसी को दोहराते न रहें। मनुष्य का मस्तिष्क किसी मशीन में ढला हुआ लोहे का सांचा नहीं है कि जिससे एक जैसे माल का उत्पादन होता रहे। हमने जो कार्य कल किया, उसमें हर दिन नया सुधार होते रहना चाहिए। कल जो कार्य किया, उसमें क्या कमी रही, हम उस ओर ध्यान दें। अपने हर कार्य में सुधारों की नई संभावनाओं को तलाशते रहें। इससे जहाँ कार्य के प्रति हमारी निष्ठा बढ़ती जाएगी, वहीं कार्य और उसके परिणामों का स्तर भी बेहतरीन होता जाएगा।

## उजागर करें, अपनी प्रतिभा

क्या हमने कभी इस बात पर ध्यान दिया कि किसी की सफलता और हमारी विफलता का राज क्या है? आखिर सफल होने वाला व्यक्ति किसी देवलोक का किन्नर नहीं है और विफल होने वाला व्यक्ति किसी पहाड़ की चट्टान नहीं है। सफल और असफल व्यक्ति अलग-अलग किस्म के नहीं होते, केवल उनके जीने और काम करने के तरीके अलग-अलग होते हैं। अपने कार्य के प्रति रहने वाला उनका नजरिया ही उनकी सफलता और असफलता का बुनियादी फर्क लिये होता है।

व्यक्ति की सोच और शैली में ही छिपा है जीवन की हर सफलता का राज। अपने किन्हीं मूलभूत सिद्धांतों, प्रतिबद्धताओं और बुद्धिमत्तापूर्ण संघर्षों के कारण ही लोग सफल होते चले जाते हैं। आखिर सफल होने वाले लोग कोई अलग काम नहीं किया करते, बस, वे हर काम अपने अलग तरीके से करते हैं। व्यक्ति की वास्तविक सफलता इसी में है कि वह अपने अतीत की हर सफलता के रिकॉर्ड में सुधार करता जाए। अपनी खामियों को सुधारना सफलता को भोर का बाना पहनाना है; अपनी गलतियों को लगातार दोहराए जाना रात के अंधियारे में खंभे से टकराना है।

भाग्य उसी की मदद करता है जो श्रम और संघर्ष के प्रति निष्ठाशील होते हैं। यदि कोई दरिद्र है, तो इसका अर्थ यह नहीं कि वह अपने कार्य में सफल नहीं हुआ, वरन् वह अपने कार्य के प्रति सन्नद्ध ही नहीं हुआ। दौड़ जीतने वाला धावक अन्य धावकों

से बहुत ज्यादा ताकतवर नहीं होता। वह जीतता भी बहुत मामूली फर्क से है, पर इसके बावजूद उसे जो इनाम मिलता है, वह उस मामूली फर्क से सौ गुना ज्यादा होता है। उसकी क्षमता और योग्यता—दोनों ही अन्य धावकों के बराबर होती है, पर इसके बावजूद वही क्यों जीतता है? तो इसका जवाब होगा, उसका आत्मविश्वास, जीतने की दृढ़ इच्छा-शक्ति और निरन्तर सकारात्मक अभ्यास ही व्यक्ति की विजय के चमत्कारी सूत्र साबित होते हैं। धरती पर ऐसा कौन प्राणी है, जिसमें क्षमता और प्रतिभा न हो। व्यक्ति यदि अपने जीवन में सफलता के कुछ छोटे-छोटे सूत्र अपना ले, तो उसके खेत और व्यापार का, जमीन और जायदाद का, खोज और आविष्कार का, उसके घर और परिवार का स्वरूप ही बदल जाएगा। वह सबका सरताज हो जाएगा।

## मुखर करें इच्छा-शक्ति

जीवन में सफलता के लिए जिस पहले मंत्र की आवश्यकता होती है, वह है व्यक्ति की दृढ़ इच्छा-शक्ति। माना कि जीवन में पलने वाली अनगिनत इच्छाएँ व्यक्ति की चेतना को छिन्न-भिन्न कर डालती हैं, किंतु जब व्यक्ति की समस्त इच्छा-शक्तियाँ एक ही लक्ष्य की ओर उन्मुख हो जाती हैं, तो वे जीवन के लिए वरदान बन जाती हैं। किसी के असफल होने का एकमात्र कारण उसमें दृढ़ इच्छा-शक्ति का अभाव ही है।

सुकरात से किसी नवयुवक ने पूछा कि सफलता का राज क्या है? सुकरात नदी में खड़े थे और युवक किनारे पर। सुकरात ने युवक को नदी में आमंत्रित किया और देखते-ही-देखते उसे अपनी पूरी ताकत के साथ पानी में डुबो दिया। युवक पानी से बाहर निकलने की कोशिश करने लगा, पर सुकरात का दबाव बना रहा। आखिर युवक ने अपनी पूरी ताकत के साथ एक बार फिर कोशिश की। सुकरात इस बार युवक की ताकत को न संभाल पाए और युवक पानी से बाहर निकल आया। युवक सुकरात के प्रति किसी भी प्रकार की बदतमीजी का व्यवहार करे, उससे पहले ही सुकरात ने पूछा—मेरे द्वारा डुबोये जाने के बावजूद तुम्हें किसने उबारा? युवक ने कहा—जीने की दृढ़ इच्छा ने। सुकरात ने कहा—सफलता का यही राज है। तुम्हारी दृढ़ इच्छा ही तुम्हारे लिए सफलता का रास्ता खोजेगी और वही तुम्हें सफलता के शिखर तक पहुँचाएगी। अपनी इच्छा-शक्ति को मुखर किये बिना सफलताएँ बिल में ही दबी रह जाती हैं। पानी आखिर तभी भाप बन जाएगा, जब इसके लिए पूरी आग हो।

## निगाह रहे लक्ष्य पर ही

सफलता प्राप्त करने का दूसरा सोपान है : तुम अपने जीवन का लक्ष्य निर्धारित करो और लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अपनी बुद्धि का उपयोग करते हुए सकारात्मक योजना तैयार करो। तुम अपने लक्ष्य को हासिल किये बगैर तब तक चैन मत लो, जब तक तुममें अन्तिम साँस है। अपने लक्ष्य को अर्जित करने के लिए तुम्हें कड़ी-से-कड़ी मेहनत करनी पड़े, तो करने से नहीं चूकना चाहिए। आखिर किसी भी विजेता का प्रदर्शन कुछ ही घड़ियों का होता है, लेकिन यह तुम भली-भाँति जानते हो कि उसके इस प्रदर्शन की सफलता में उसका कितना खून-पानी बहा होगा। ऐसा नहीं कि एक सफल खिलाड़ी कभी असफल न हुआ होगा, किन्तु अगर अर्जुन की आँखों में एकमात्र लक्ष्य ही बसा हुआ है, तो वह लक्ष्य-भेदन जरूर करेगा। तुम लक्ष्य के प्रति निष्ठाशील हो, तो असफलताओं से भय मत खाओ। असफलता स्वयं सफलता का रास्ता दिखाती है।

हर सफलता के पीछे असफलताओं की एक बड़ी कहानी छिपी होती है। मोहम्मद गोरी ने सम्राट पृथ्वीराज चौहान पर दो-चार नहीं, पूरे सोलह आक्रमण किये मगर हर बार उसे मुँह की खानी पड़ी। आखिर हालत यह हो गई कि उसे अपनी जान बचाने के लिए किसी गुफा में शरण लेनी पड़ी। वहीं उसे सफलता का शास्त्र पढ़ने को मिला। उसने देखा कि एक मकड़ी अपने घर तक पहुँचने की कोशिश कर रही है। वह एक-दो-चार-दस बार चढ़ी, लेकिन हर बार उसका पाँव फिसल जाता, वह जमीन पर लुढ़क आती। मोहम्मद गोरी मकड़ी के इस अदम्य दुःसाहस को देखता रहा।

जब मकड़ी सोलहवीं और सत्रहवीं बार फिर चढ़ने की कोशिश करने लगी, तो एक दफा तो गोरी को लगा कि वह इस नासमझ मकड़ी को कैसे समझाए कि वह व्यर्थ में क्यों मेहनत कर रही है, पर वह यह देखकर आत्मविश्वास से भर उठा कि मकड़ी आखिर अपने घर तक पहुँचने में सफल हो गई। एक हारा हुआ सम्राट पुनः विजय के विश्वास से भर उठा और कहते हैं कि मोहम्मद गोरी ने अपने सत्रहवें युद्ध में पृथ्वीराज चौहान को बंदी बना लिया। सफलता के रास्ते पर चलते जो लोग विफल हो जाया करते हैं, क्या वे मकड़ी और मोहम्मद गोरी से प्रेरणा लेंगे ?

## क्षमता-योग्यता का पूरा उपयोग हो

सफलता का तीसरा सूत्र यह है कि हम निरंतर श्रम और संघर्ष करें। श्रम से जी चुराने वाले सफलताओं को अर्जित नहीं किया करते हैं। सौभाग्यशाली वही हैं, जो भाग्य के भुलावे में न आकर आत्मविश्वास के साथ कठिन परिश्रम करते हैं। वे रास्ते में आने वाली चट्टानों की परवाह किये बगैर अपनी शक्ति, क्षमता और योग्यता का कोशिशों में छिपी कामयाबियाँ

उपयोग करते हुए उन्हें भी पार कर जाते हैं। तुम यदि अपने दृढ़ आत्मविश्वास को लेकर जीवन के मैदान पर उतर जाओ, तो दुनिया की ऐसी कौन-सी ताकत है, जो तुम्हें सफल और विजयी होने से रोक सके ! गीता में भगवान ने मनुष्य के लिए पहला संदेश ही कर्मयोग का दिया, तुम कड़ी मेहनत करो। आज जो तुम्हें खंडप्रस्थ लग रहा है, तुम्हारी मेहनत जरूर रंग लाएगी और खंडप्रस्थ को इंद्रप्रस्थ में तब्दील करेगी। तुम अब तक सफल इसलिए नहीं हुए हो कि तुमने अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए केवल अपनी पचीस प्रतिशत शक्ति और योग्यता का उपयोग किया है, जिस दिन तुम सौ की सौ प्रतिशत क्षमता और योग्यता का उपयोग कर लोगे, उसी दिन तुम सफलता के रास्ते के मील के पत्थर हो जाओगे।

जैसे एक विद्यार्थी निरन्तर कुछ-न-कुछ सीखते रहना चाहता है, जीवन के विद्यालय के तुम भी एक विद्यार्थी बनो। पूर्व में हुई अपनी गलतियों से शिक्षा लो और नये वर्ष की नई परीक्षा में सौ फीसदी सफल होने के लिए सन्नद्ध हो जाओ। मेहनत किये बगैर तो माँ भी रोटी नहीं डालती। सफलता के लिए मेहनत तो करनी ही होगी। आखिर दुनिया में कोई भी चीज मुफ्त में नहीं मिलती। किसी जुए या लॉटरी के चक्कर में पड़कर रातों-रात धनवान होने का ख्वाब देखने वाले आखिर सड़क पर ही आ जाया करते हैं। सफलताएँ उन्हीं की बरकरार रहती हैं, जिनके लिए सफलता संयोग नहीं, वरन् उनके मूलभूत सिद्धान्तों और कठिन परिश्रम का परिणाम होती है।

तुम अपने हाथों में खींची भाग्य-रेखाओं को टटोलते रहने की बजाय किसी कठिन परिश्रम और संघर्ष के लिए अपने हाथों का उपयोग करो। परिश्रम ही मनुष्य के लिए वह ईश्वरीय शक्ति है, जो उसकी भाग्य-रेखाओं को उसके लिए सौभाग्य में बदल सकती है, उसे सफलता का सुकून दे सकती है। आओ, हम अपने लक्ष्य के प्रति फिर से संकल्पशील हों और आँखों में सफलता का नूर लिये फिर से प्रयत्नशील हों।



# जीवन-विकास के नायाब पहलू— शिक्षा और स्वाध्याय

---

जीवन-भर विद्यार्थी बने रहें,  
ताकि ज्ञान-प्राप्ति के द्वार सदा खुले रहें ।

---

**मानवीय** जीवन के मानसिक और बौद्धिक विकास के लिए कई महत्वपूर्ण आयाम हैं, जिनमें शिक्षा और स्वाध्याय अपनी विशिष्ट भूमिका निभाते हैं। शिक्षा और स्वाध्याय—दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जीवन के प्रथम चरण में शिक्षा की अहमियत है, किन्तु उसके शेष भाग में स्वाध्याय की अपेक्षा है। ज्ञान तो जीवन का वह पहलू है, जिसका कभी अन्त नहीं है। जो किसी उपाधि-विशेष तक के लिए पढ़ाई करके अपने आपको पूर्ण शिक्षित मान लेता है, तो ज्ञान की दृष्टि से यह उसकी पराजय है। शिक्षित होने का अर्थ यह नहीं कि किताबों को पढ़ लेना या विद्यालयीय परीक्षाओं में उत्तीर्ण हो जाना। शिक्षित होने का अर्थ यह है कि ज्ञान और विज्ञान के द्वारा अपने बौद्धिक और मानसिक विकास के साथ जीवन के बहुआयामी विकास के लिए समर्थ-सुदृढ़ हो जाना। शिक्षा और ज्ञान का क्षेत्र तो इतना व्यापक है कि व्यक्ति चाहे तो जीवन भर विद्यार्थी और शिष्य बना हुआ रह सकता है।

दुनिया में बहुप्रचलित धर्मों में से एक है—सिक्ख धर्म। शायद सरदारों के लिए 'सिक्ख' शब्द उनके धर्म और परंपरा का परिचायक है, किंतु मैं सिक्ख धर्म अथवा सिक्ख कुल में पैदा न होने के बावजूद अपने आपको बड़े प्रेम से सिक्ख कहूँगा। सिक्ख

जीवन-विकास के नायाब पहलू—शिक्षा और स्वाध्याय

शब्द शिष्य से ही बना है। तुम अपने आपको चाहे सिक्ख कहो या शिष्य, दोनों का अर्थ और भाव एक ही है। जो हर समय कुछ-न-कुछ सीखने को, नया जानने को, नया करने को उत्सुक और संप्रेरित रहता है, वही व्यक्ति शिष्य है और वही व्यक्ति सिक्ख।

## जिज्ञासा-भाव न छूटे

कुछ-न-कुछ नया सीखने और जानने की ललक तो व्यक्ति में हर समय रहनी ही चाहिए। ऐसा नहीं कि एम.ए., बी.ए. कर लिया, कहीं नौकरी लग गई और हमने शिक्षा और ज्ञान की इतिश्री मान ली। हम विद्यालयों-महाविद्यालयों में जो अध्ययन करते हैं, वह तो एक तथ्यशुदा-आरोपित वस्तु है, किंतु महाविद्यालयीय अध्ययन से मुक्त हो जाने के बाद विश्व का विराट क्षितिज खुला है। हम अपनी मौलिक दृष्टि और रुचि के अनुरूप ज्ञान-सामग्री की तलाश कर सकते हैं और किसी नई मंजिल की स्थापना के लिए नये-नये आयामों की तलाश कर सकते हैं। विद्याभ्यास का वह पहला चरण शिक्षा के तहत आ जाएगा, किंतु यह दूसरा चरण स्वाध्याय, चिंतन और अनुसंधान के अंतर्गत।

मैं मानता हूँ कि शिक्षा जीवन का अनिवार्य चरण है, किंतु शिक्षा और मनुष्य के संबंध पर जब विचार करते हैं तो यह जाहिर होता है कि शिक्षा वह होनी चाहिए, जो व्यक्ति के मौलिक और सहज विकास में सहायक हो। इतिहास की पुरानी किताबों में शिक्षा की सार्थकता के जो स्वरूप देखने को मिलते हैं, वे यह साफ़ जाहिर करते हैं कि तब शिक्षा का उद्देश्य रोजी-रोटी नहीं था, वरन् जीवन के आंतरिक और व्यावहारिक स्वरूप को परिपक्व और संस्कारित बनाना था। तब लोगों के लिए शिक्षा जीने की कला थी। वे पढ़े हुए को जीवन में आचरित हुआ देखना पसंद करते थे। उनकी कथनी उनके ज्ञान से उद्भूत होती थी। कथनी की अभिव्यक्ति से पहले व्यक्ति इस बात के लिए सजग रहता था कि उसकी कथनी, उसकी करनी के विरुद्ध न हो। माना कि अपवाद तो तब भी होते थे, लेकिन आज की शिक्षा बहुत संकुचित हो चुकी है।

## शिक्षित वर्ग अशिक्षित क्यों ?

आज हर विद्यार्थी का लक्ष्य पाठ्यक्रम को उत्तीर्ण करना, उपाधि हासिल करना और रोजी-रोटी के लिए उस उपाधि का उपयोग करना ही रह गया है। यही कारण है कि हमारे दैनंदिन जीवन से स्वाध्याय का विलोप हो गया है, हम किसी समाचार-पत्र अथवा मनोरंजन से जुड़ी पत्र-पत्रिका भले ही देख-पढ़ लेते हों, लेकिन इसके अलावा पठन-मनन के प्रयास देखने को नहीं मिलते। व्यक्ति के ज्ञान में नित्य नूतनता और

परिपक्वता का स्वरूप देखने को नहीं मिलता । हमने जो पढ़ाई भी की है, उसका भी न जाने क्या तरीका रहा कि आज यदि किसी डॉक्टर से पूछा जाए कि तुमने अपनी आठवीं और दसवीं की पढ़ाई में कौन-कौन से पाठ पढ़े तो उसके लिए बताना मुश्किल हो जायेगा । शिक्षा का अर्थ यह कदापि नहीं है कि आगे पढ़ते जाओ और पिछला जो पढ़ा है, उसे भूलते जाओ । हर अगला वास्तव में पिछले का विकास होता है, पर उसे भूल जाना अपने आपके साथ छलावा है ।

शिक्षा के साथ स्वाध्याय का संबंध न जोड़ पाने के कारण ही आज का आम शिक्षित वर्ग अशिक्षित-सा बना हुआ है । भला यह कौन नहीं जानता कि शराब या सिगरेट पीना, जर्दा-तंबाकू खाना व्यक्ति के स्वास्थ्य के लिए छिपा हुआ जहर है, लेकिन इसके बावजूद इन सबका धड़ल्ले से प्रयोग हो रहा है । सरकार और शासन-प्रशासन भी विद्यार्थियों की पाठ्यपुस्तकों में तो इनके निषेध का उल्लेख करते हैं, वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में इनके दुष्परिणामों का निष्कर्ष निकालते हैं, लेकिन सरकारों ने न जाने कौन-सी भांग पी रखी है ? करे भी तो क्या, इनकी आमद से ही उनकी सरकारों का खर्चा निकलता है, उनकी सरकारों का अस्तित्व टिका है ।

## माँ : पहली शिक्षिका

शिक्षा तो वह है जो हमें हमारी मिथ्या-दृष्टि से मुक्त करे । जिससे जीवन की अन्तर्दृष्टि मिले वही शिक्षा आदमी के लिए वास्तविक रूप से कल्याणकारी है । शिक्षा जब तक जीवन की दीक्षा के रूप में न ढले, तब तक वह अधूरी ही है । जहाँ शिक्षा का गुरुतर भार वहन करते हैं शिक्षक और प्रोफेसर, वहीं दीक्षा का संस्कार होता है उसके अपने घर वालों के द्वारा । घर के संस्कार शिक्षा को दीक्षा के रूप में ढालते हैं । यह कार्य सही रूप से संपादित कर सकती है हमारी अपनी माँ । पिता तो रोजी-रोटी कमाने की व्यवस्था में व्यस्त हो जाते हैं, लेकिन माँ हर बच्चे को दीक्षित कर सकती है । वह सही अर्थों में जीवन की पहली शिक्षिका है ।

अपना बच्चा कैसा बने, इसके लिए सबसे ज्यादा सजग माँ ही होती है । हर माँ अपने बच्चे को ऊँचा उठा हुआ देखना चाहती है । इसके लिए वह बच्चे से भी श्रम कराती है । शिक्षा, शिक्षक और विद्यालय का भी उपयोग करती है । निश्चय ही जन्म देने वाले की महिमा इसी में है कि वह अपने जने हुए को संस्कारित और विकसित रूप प्रदान करे ।



यह बात ठीक है कि आज की शिक्षा-शैली का स्वरूप बदल चुका है; बच्चों पर किताबों का इतना भार आ चुका है कि वह उनकी उम्र के अनुसार उनके लिए दबाव और तनाव का ही कारण बनता है। आजकल हम दो-ढाई-तीन वर्ष की उम्र में ही बच्चे को स्कूल भेजना शुरू कर देते हैं। हमारे इस पुरुषार्थ से बच्चे में बहुत जल्दी ही स्कूल जाने की आदत पड़ जाती है, लेकिन इसका सबसे बड़ा नुकसान यह होता है कि बचपन में जो घरेलू संस्कार पड़ने चाहिए, उनका बीजारोपण नहीं हो पाता। बच्चा केवल किताबी ज्ञान में ही उलझ जाता है। न ही उसको नैसर्गिक गुणों के विकास का आधार मिल पाता है और न ही उदात्त गुणों के परिसंस्कार का वातावरण।

## शिक्षा वही, जो संस्कारित करे

आज हमने शिक्षा को नये युग की नई रूढ़ि और नई फैशन बना डाला है। हम बच्चे को संस्कारशील विद्यालय में दाखिला दिलाने की बजाय होड़ाहोड़ में ऐसे विद्यालयों में भेजना पसंद करते हैं जहाँ जाकर बच्चा न इधर का रहता है, न उधर का। शिक्षा तो स्वयं एक सेवा है। आज तो शिक्षा और चिकित्सालय विशुद्ध व्यावसायिक प्रतिष्ठान हो गये हैं। जो स्कूल जितना महंगा, उसका 'स्तर' उतना ही ऊँचा! अब ऐसी शिक्षा का हम क्या करें जिससे उठने-बैठने और खाने-पीने का भी विवेक न रहे। इस हाय-हैलो के जमाने में माता-पिता और बड़ों को प्रणाम करने में भी संकोच और शर्म महसूस होती है। भला जिसे अपने माता-पिता को धोक लगाने में भी शर्म आती है, वह उनके वक्त-बेवक्त में क्या तो काम आएगा और क्या सेवा करेगा! ऐसी शिक्षा के द्वारा व्यक्ति का विकास तो जरूर होगा, लेकिन उसकी स्वार्थ-चेतना का ही।

आखिर व्यक्ति के अपने सौम्य स्वरूप का भी महत्व होता है। सबके साथ मिलने-बैठने का, एक-दूसरे के सुख-दुःख में काम आने का, मर्यादा और शालीनता का अपना अर्थ और महत्व है, उसकी अपनी आवश्यकता है, उसका अपना परिणाम है। हम चाहे शिक्षा लें अथवा दें, शिक्षा का लक्ष्य पेट भरने तक सीमित न रहे। शिक्षा तो व्यक्तित्व-विकास का आधार है। शिक्षा को हमें नित्य-नवीन विकास के पहलूओं से जोड़ना चाहिए और ज्ञान के नित्य-नवीन-नायाब पहलूओं का उपयोग करना चाहिए।

## स्वीकारें, स्वाध्याय का संकल्प

हम स्वाध्याय अवश्य करें। हम केवल पठन और अध्ययन तक ही सीमित न रहें, वरन् ज्ञान के पैमानों को थोड़ा विस्तार दें। हम चिंतन-मनन और अनुसंधान भी

करें। अपनी बुद्धि का मनन के लिए उपयोग न कर पाने के कारण ही ज्ञान और जीवन के बीच एक विरोधाभास अथवा एक साफ दूरी बनी हुई रहती है। मनन से ही जीवन में मनुस्मृति का जन्म होता है। पठन के द्वारा तो किसी और का ज्ञान हमें मिलता है, लेकिन मनन तो वह मटका है, जिसमें उस ज्ञान का मंथन होता है, अनुशीलन और अनुसंधान होता है और तब जो सार-नवनीत निकलकर आता है, वह ज्ञान का परिपक्व परिणाम है। तब उस ज्ञान और जीवन के बीच एक संतुलन होगा, एक समरसता होगी; उस ज्ञान का जीवन-जगत के लिए उपयोग होगा।

हम नियमित स्वाध्याय करें। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि अतीत में हमारा एज्यूकेशन कहाँ तक का रहा। मेरे नाना पाठशाला की पढ़ाई की दृष्टि से तीसरी फैल थे, लेकिन हर कोई यह जानकर चमत्कृत हो उठेगा कि उन्होंने अपने जीवन में दस हजार से ज्यादा ऐतिहासिक और अनुसंधानपरक लेख लिखे। जीवन में अपनाया गया एक अकेला स्वाध्याय का संकल्प व्यक्ति को महान विद्वान बना देता है।

मैं तो कहूँगा अधिक न सही, आप प्रतिदिन आधे घंटे स्वाध्याय करने का संकल्प ग्रहण करें। आप पाएँगे कि इस एक संकल्प की आपूर्ति की बदौलत आप एक महीने में कम-से-कम पाँच-सात विशिष्ट ग्रंथों को पढ़ चुके हैं यानी एक वर्ष में आप पचासों ग्रंथ और उनका ज्ञान अपनी बुद्धि को प्रदान कर चुके हैं। मात्र आधे घंटे नियमित स्वाध्याय करने वाला व्यक्ति, मेरी गारंटी है कि वह पाँच साल में पारंगत विद्वान हो जाएगा। आप चाहें तो अपने स्वाध्याय के क्रम को किसी एक विषय से जुड़ा हुआ रख सकते हैं और चाहें तो कुछ सरसता और समरसता के लिए एक से अधिक विषयों का भी उपयोग कर सकते हैं।

## प्रमाद को बाधक न बनने दें

इसी सप्ताह मेरे पास एक ऐसे महानुभाव आए हैं जिन्होंने तत्त्व-ज्ञान का एक विश्वकोश, एनसाइक्लोपीडिया तैयार किया है। मैं उनके कार्य को देखकर अभिभूत हुआ। उन्होंने रहस्य उद्घाटित करते हुए कहा—यह विश्वकोष और कुछ नहीं, मेरे दस-बारह वर्ष के निरंतर स्वाध्याय का सुमधुर परिणाम है। मैंने उन्हें साधुवाद दिया और एक बार पुनः स्वाध्याय का महत्व स्वीकार हुआ।

यदि आपको लिखने का शौक हो तो आप इसका भी उपयोग कर सकते हैं। जब आप प्रतिदिन रात को सोने से पहले दो पन्ने भी लिख लेंगे तो निश्चय ही आप प्रति छः

माह में एक विशाल ग्रंथ के लेखक बन सकते हैं। सहजतया प्रतिवर्ष आप ज्ञान के दो पुष्प इस धरती के कल्याण के लिए समर्पित कर सकते हैं। निश्चय ही आपका प्रमाद, आपके स्वाध्याय और ज्ञान का बाधक बन रहा है। आप अपने जीवन से प्रमाद को वैसे ही दूर हटा दें, जैसे जूतों के पुराने हो जाने पर उन्हें घर के बाहर फेंक दिया जाता है।

जीवन की हर सुबह ईश्वर की प्रार्थना करना, स्वयं के लिए सौभाग्यकारी है, पर इससे भी बड़ी हकीकत यह है कि स्वाध्याय करना उससे भी ज्यादा कल्याणकारी है। प्रार्थना से निपजा स्वाध्याय और स्वाध्याय से निष्पन्न प्रार्थना—दोनों का स्वाद, सुवास और प्रकाश अनेरा ही होता है। तब दोनों अलग नहीं होते, एक ही सिक्के के अभिन्न पहलू हो जाते हैं



# लगे बुहारी अन्तर्-घर में

---

मन के विकारों का त्याग करने वाले  
जीवन में स्वर्ग जैसा सुख पा लेते हैं ।

---

**म**नुष्य घर में निवास करता है, पर यह प्रतीक कितना संटीक है कि मनुष्य का जीवन स्वयं अपने आप में घर ही है । जैसे घर में रहने वाले को घर की साफ-सफाई भी करनी होती है और उसका श्रृंगार भी । जीवन के आँगन में भी धूल-धूसर जमा हुआ है । जीवन को सुन्दर और जीने लायक बनाने के लिए उस जमी पड़ी धूल को, कचरे और तिनकों को हटाना होगा, बुहारी लगानी होगी, सफाई करनी होगी । तभी वह घर आनन्दपूर्वक रहने और जीने लायक बन सकेगा ।

## जीवन का रूपान्तरण

आपने कभी किसी माली को पौधों की निराई-गुड़ाई करते देखा होगा । कोई पौधा केवल पानी देने से नहीं फलता, उसकी काँट-छाँट भी करनी पड़ती है; पौधे में जो कमी आ चुकी है उसे तोड़ना और उखाड़ना पड़ता है । जीवन में आई त्रुटियों को भी तो हटाना जरूरी है, ताकि हृदय-मस्तिष्क और चेतना के पौधे ठीक से फल-फूल सके । पौधे के लिए जरूरी है कि वह हर तूफानी थपेड़ों को सहने में समर्थ हो । ऐसे ही मनुष्य को भी उस सुख-शांति और आनंदमय जीवन का मालिक होना चाहिए, जिसे मानवीय मन के विकार और दुःख विचलित और बाधित न कर सकें ।

क्या आप जानना चाहेंगे कि जीवन से उसकी खामियों को दूर हटाने का नाम क्या है ? इसे आम भाषा में 'त्याग' का नाम दिया जाता है । त्याग जीवन को स्वच्छ और स्वस्थ करने का अमृत तरीका है । भारतीय संस्कृति तो त्याग की महिमा से भरी हुई है । आप संसार के चाहे जिस कोने में चले जाएँ, आपको त्याग से बढ़कर अन्य किसी की गरिमा देखने को नहीं मिलेगी । अपनी ओर से त्याग का पथ अपनाने के कारण ही दुनिया में संत-महात्माओं की इतनी पूजा होती है । माना कि किसी राष्ट्रपति या सम्राट का वैभव अतुलनीय होता होगा, लेकिन जब वही किसी संत के समक्ष उपस्थित होता है, तो वह अनायास नत-मस्तक हो जाता है । उसे लगता है कि नहीं, यह मुझसे ज्यादा श्रेष्ठ और महान् है, क्योंकि इसने अपने जीवन में कुछ त्यागा है । भोग कितना भी महान् क्यों न हो, त्याग के आगे तो बालक ही रहेगा ।

संसार का त्याग करके स्वयं को स्वस्ति-मुक्ति के लिए समर्पित करना, संन्यस्त जीवन अंगीकार करना आम आदमी के लिए संभव नहीं है । आम आदमी की यह कमजोरी और मजबूरी है कि वह सन्त-जीवन को प्रणाम कर सकता है, पर उसे अंगीकार नहीं । हर आदमी सन्त बन जाए, यह संभव भी नहीं । मैं जिस त्याग की बात कर रहा हूँ, उसका संबंध किसी साधु-संतों के संन्यास से नहीं, वरन् जीवन के रूपान्तरण से है, जीवन में घर कर चुकी कमियों और गलतियों को हटाने से है ।

माना कि हर व्यक्ति संन्यासी नहीं हो सकता, पर हर व्यक्ति अपने हृदय को तो सही और साधु बना सकता है । हृदय में साधुता का आत्मसात होना साधुता का वह व्यावहारिक रूप है, जिसे कि हम घर-गृहस्थी और संसार में रहकर प्राप्त कर सकते हैं । इस अर्थ में हर व्यक्ति को संन्यासी होना चाहिए । संन्यास का मतलब संसार से पलायन नहीं, वरन् अपने मन में पलने वाली विकृतियों, बुराइयों और अंध-विश्वासों का त्याग करने से है । सच्चा और आनंदमय जीवन वही है, जो मनोविकारों और कष्टों से संत्रस्त हो ।

## त्याग, अन्तर्मन की विकृतियों का

मैं त्याग का सम्बन्ध किसी व्रत-उपवास से नहीं जोड़ रहा हूँ; किसी वस्तु और व्यक्ति के त्याग की बात भी नहीं कर रहा । बाहरी वस्तुओं के उपभोग पर संयम रखना तो अच्छी बात है । मैं आत्मिक और आंतरिक त्याग की बात कर रहा हूँ । आत्मत्याग के बिना आत्मज्ञान संभव ही नहीं होता । जो व्यक्ति अपने जीवन की आध्यात्मिक उन्नति चाहता है, उसे अन्ततः आंतरिक त्याग की शरण में ही आना होगा । आंतरिक त्याग का

अभिप्राय है—अंतर्मन में पलने वाली विकृतियों, बुराइयों और पापों का त्याग । जीवन में जो कुछ भी गलत है, उसका त्याग होना ही हितावह है । हमें अच्छाई और भलाई का त्याग नहीं करना है । वे तो जीवन में खिले हुए सदाबहार फूल हैं । त्याग तो हमें उन मनोविकारों का करना है, जो जीवन-विकास के रोड़े और काँटे बने हुए हैं ।

जीवन की बुराइयों को त्यागने में भला कौन-सी बुराई है । जीवन में वह काम कतई नहीं किया जाना चाहिए कि जिससे स्वयं का अहित हो । अपनी बुराइयों को त्यागना क्या अहितकारी है ? अपने पापों को त्यागना क्या अमंगलकारी है ? हमें अपने किसी भी मानसिक विकार का त्याग करते समय भले ही शुरुआत में बेचैनी हो, पर यह त्याग जब अपना परिणाम देगा, तो वह हमारे लिए जीवन का अमृत-वरदान बन जाएगा ।

जो शराब पीते हैं, मैं उनसे कहूँगा कि वे शराब का त्याग करें; जो गुण्डागर्दी करते हैं, मैं उनसे उनके आवारापन के त्याग की बात कहूँगा; जो कंजूस हैं, उनके लिए लालसाओं को त्यागने की बात होगी । यह त्याग भले ही शुरुआत में कठिन और कष्टकर लगे, पर आप ही जरा मुझे बताइये कि शराब पीने से कितनों का हित सधता है और कितनों का अहित होता है ? कोई व्यक्ति नहीं चाहता कि वह किसी शराबी बाप का बेटा कहलाए । शराब पीकर जब हम अपने परिवार की ही उपेक्षा और घृणा का पात्र बन रहे हैं, तो कोई और भला हमें क्या सम्मान देगा !

आप शराब, भांग, जर्दा-तंबाकू छोड़कर देखिए, आप पाएँगे कि आपका परिवार न केवल इस बात से प्रसन्न हो उठा है, वरन् ऐसा करके आपने उसे बर्बादी के कगार पर बढ़ने से बचा लिया है । आपके तन-मन और बुद्धि की शक्ति पुनः स्वस्थ और स्फूर्त हो चुकी है; आपके परिवार की फुलवारी फिर से चहक-महक उठी है । जरा मुझे बताइये कि यह त्याग आपके लिए कल्याणकारी रहा या कष्टकारी ? संभव है ऐसा करने में आपको थोड़ा कष्ट भी उठाना पड़ा हो, पर फायदा सवाया हो, तो उसके लिए चौथाई कष्ट भी बर्दाश्त किया जा सकता है ।

## त्याग से पाएँ जीवन-सौंदर्य

यदि आप गुंडागर्दी करते हैं, तो आप उसे त्यागकर देखिए आप पाएँगे कि समाज में, आम जनमानस में आपके लिए कितनी सहानुभूति जग चुकी है । सम्राट अशोक युद्ध करके महान् नहीं हुए, वरन् युद्धों का त्याग करके भारतीय सभ्यता व संस्कृति के सिरमौर बन गए । जिन्हें लगता है कि वे कृपण-वृत्ति के हैं, वे व्यर्थ ही धन-दौलत को बटोरने में

लगे बूहारी अन्तर्-घर में

अपने जीवन-धन को खर्च कर रहे हैं। मनुष्य आखिर कितना भी क्यों न बटोर ले, उसे धरती पर ही छोड़कर जाना है। फिर क्यों न हम उदार-भाव से अपने हाथों अपने धन का उपयोग करें; परिजन और आम जन का हित साधें। केवल अपने निजी स्वार्थों को पोषित करते रहना आदमी का अंधापन है। ओह, जहां बहुत बड़ा है। हर किसी को आपके स्नेह और उदारता की जरूरत है।

आपको लगता है कि आपके स्वभाव में क्रोध और चिड़चिड़ापन है, तो आप उसे त्याग करके हृदय में शांति और धैर्य को स्थान दें। अपने जीवन में इस त्याग को जीने के लिए हमें कुवचन, कुविचार और कुकृत्यों का त्याग करना होगा; गाली-गलौच, आक्षेप-प्रत्याक्षेप, वाद-प्रतिवाद और दुर्व्यवहारों से परहेज रखना होगा; हमें किसी के द्वारा किये जाने वाले अपकार के बदले में भी प्रेम और सद्भावना की रसधार बहानी होगी। हमेशा पानी ही आग को बुझाता है, आग, आग को नहीं।

आपका क्रोध आपके जीवन का प्रबल मानसिक विकार है। अपने उग्र और क्रोधी स्वभाव के कारण ही समर्पित और सेवानिष्ठ लक्ष्मण सबके प्रेम और सहानुभूति का पात्र न बन सका। हम यह तो सोचें कि हमें क्रोध से मिलता क्या है, सिवा तनाव, असंतुलन और अविवेक के? आओ, अब हम हर रोज ऐसा उपवास करें कि जिसमें भोजन तो हो, पर क्रोध नहीं। मैं आने वाले चौबीस घंटों के लिए क्रोध नहीं करूँगा, यह संकल्प आपके जीवन को तपोमय बना देगा, आपको उपवास का फल मिल जाएगा।

क्या आपको लगता है कि जीवन में आपका कोई शत्रु है; आपको किसी से नफरत है? यदि हाँ, तो कृपया अपने मन में पलने वाले वैर और द्वेष के भाव को दूर करें। माना कि हम सत्य के लिए सलीब पर नहीं चढ़ सकते, लेकिन किसी की गलती को माफ करने की करुणा तो दर्शा ही सकते हैं। हम प्रेम की पवित्र वेदी पर द्वेष और घृणा का त्याग करें। आपका यह छोटा-सा त्याग आपके जीवन का महान् बलिदान बन जाएगा। आप स्वयं तो सुखी होंगे ही, उन्हें भी आपके सुख का सुकून मिलेगा जिनसे कि हम अब तक जलते और कटते रहे, जिनके पतन में रस लेते रहे।

## बुराई त्यागें, भलाई सहेजें

आनंदमय जीवन का स्वामी बनने के लिए हम अपने अहम् और दम्भ का भी त्याग करें। अरे, दुनिया में किसकी अकड़ रही है! सब परिवर्तनशील हैं। राजा, रंक

बन जाते हैं और रंक, राजा । आखिर हर संत का अपना अतीत होता है और हर पापी का एक भविष्य । दंभी तो आखिर हारता और टूटता ही है । जीता और जीतता तो वह है, जिसके हृदय में सरलता और विनम्रता है । हम दंभ का तो त्याग करें ही, यदि हमें लगता है कि हमारे मन में स्त्री-पुरुष के अंगों के प्रति कामुकता है, तो यह सरासर हमारे मन का भद्दापन है । जुबान से क्रोध न करना और आँख को निर्विकार रखना जीवन का सबसे उदात्त गुण है ।

व्यक्ति ज्यों-ज्यों अपने मानसिक विकारों का त्याग करता है, वह आध्यात्मिक सौंदर्य से ओत-प्रोत होता चला जाता है । आध्यात्मिक सौंदर्य की सबसे ज्यादा सुषमा और शक्ति होती है । उसका आकर्षण ही अनेरा होता है । ईश्वर उसी में साकार होता है, जिसके हृदय का आँगन साफ-स्वच्छ और सुन्दर होता है । तुम अपने को ठीक करके देखो, दिव्यता का ठिकाना तुम स्वयं बन जाओगे । तुम अच्छाई और भलाई की नौका पर चढ़कर देखो, बुराई का सागर अपने आप लंघ जाएगा ।





# सुधरे संस्कार-धारा

---

सही नजरिये के लोग चमड़ी के रंग पर ध्यान नहीं देते,  
वे सदा गुण और संस्कारों को महत्त्व देते हैं।

---

**कौन** व्यक्ति कैसा है, इसकी सही पहचान उसके रंग-रूप और जाति से नहीं, वरन् उसके जीवनगत संस्कारों से होती है। व्यक्ति के संस्कार ऊँचे हों, तो छोटे कुल में पैदा होकर भी उच्च आदर्शों को स्थापित कर जाएगा। व्यक्ति के संस्कार यदि निम्न कोटि के हैं, तो उसका ऊँचे कुल में पैदा होना, उसकी कुलीनता पर व्यंग्य ही होगा। पहले चरण में हम व्यक्ति की पहचान उसके कुल से करवा सकते हैं, लेकिन अंततः तो आदमी द्वारा आत्मसात किये गये संस्कार ही काम आएँगे। गोरे रंग को देखकर आकर्षित होने वाले युवक को तब पछताना पड़ता है, जब उसे अपनी पत्नी में सम्यक् संस्कारों का अभाव नजर आता है।

सही नजरिये के लोग चमड़ी के रंग पर ध्यान नहीं देते, वे सदा गुण और संस्कारों को ही महत्त्व देते हैं। रंग आँखों को सुहावना लगता है, पर जीवन तो संस्कारों के संतुलन से ही सुखी और सुव्यवस्थित होता है।

## व्यक्ति की गरिमा और मर्यादा हैं संस्कार

कौन आदमी कैसा है, यदि तुम्हें यह पहचानना हो तो तुम उसके संस्कारों को पहचानने की कोशिश करो। संस्कार तुम्हें व्यक्ति का सही मूल्यांकन करवा देंगे।

संस्कार जीवन की नींव हैं, जीने की संस्कृति हैं। यही व्यक्ति की मर्यादा और गरिमा है। संस्कारों ने व्यक्ति को, जाति और समाज को सदा सुखी ही किया है। जो अपनी पीढ़ी को सम्यक् संस्कारों का स्वामी नहीं बना पाते हैं, उन्हें अन्ततः पछताना ही पड़ा है।

## पूर्व जन्म की संस्कार-धारा

व्यक्ति का संस्कारों के साथ ऐसा संबंध है, जैसा जल का जमीन के साथ। व्यक्ति के कुछ संस्कार तो उसके अपने होते हैं, लेकिन जब हम जीवन को उसकी गहराई तक जाकर देखते हैं, तो यह सत्यबोध होता है कि हर व्यक्ति अन्ततः संस्कारों का ही एक सातत्य है। उसका जीवन एक जन्म का नहीं, जन्म-जन्मान्तर के संस्कारों का परिणाम है। आज इस जीवन में आदमी जो कुछ करता है, सब कुछ उसी का चाहा और चीन्हा नहीं होता। उसके भीतर इस जन्म के और पूर्व जन्म के संस्कारों का एक प्रवाह गतिशील रहता है। वर्तमान में हम जो कुछ अच्छा-बुरा करते हैं, उनके पीछे पूर्वगत संस्कारों की एक बहुत बड़ी भूमिका रहती है।

कोई यदि पूछे कि व्यक्ति के पीछे कौन रहता है, तो मेरा जवाब होगा—उसके अपने संस्कार। पूर्व जन्मों के संस्कार, इस जन्म के संस्कार, परिवार-जाति-धर्म और समाज के संस्कार, उसके चित्त के संस्कार, उसके तन-मन के धर्मों का संस्कार, उसके माता-पिता का संस्कार। कहते हैं व्यक्ति पर उसकी सात पीढ़ी तक का असर होता है। माता-पिता के संस्कार तो आनुवंशिक रूप में उसके साथ रहते ही हैं, उसके दादा-दादी, नाना-नानी और कई बार तो पाया गया है कि उसके पड़-दादा-दादी, लड़-दादा-दादी, पड़-नाना-नानी और लड़-नाना-नानी तक का संस्कार व्यक्ति में मुखरित हो जाता है। यह सब वास्तव में संस्कारों की आनुवंशिकता है।

माना कि हम पीढ़ी-दर-पीढ़ी से पोषित होने वाले संस्कारों को तत्काल नहीं बदल सकते, लेकिन हाँ, हमारी सजगता और संकल्प-शक्ति से उन पर नियंत्रण तो कर ही सकते हैं। देर-सवेर हम उन पर आत्मविजय प्राप्त कर सकते हैं। कुछ संस्कार ऐसे होते हैं, जो माता-पिता द्वारा मिलते हैं और जो कुछ संस्कार ऐसे होते हैं जो संगत-सोहबत और शिक्षा से मिल जाया करते हैं। जीवन में पलने वाली बुरी आदतों के पीछे अधिकांशतया हमारी संगति और मित्र-मंडली का ही हाथ होता है। हम अच्छी प्रवृत्तियाँ तो स्वीकार नहीं कर पाते, बुरी आदतों के जल्दी शिकार हो जाते हैं। स्वाभाविक बात है कि जब कोई कुत्ता दरवाजे को खुला देख घर के आँगन की ओर चला आता है, तो घर के सदस्य उसे रोटी देने की बजाय भगाने और लाठी से पीटने के लिए उत्सुक हो

जाते हैं। यह प्रवृत्ति पूर्व जन्म से आई संस्कार-धारा की परिणति है।

बच्चे पिता के द्वारा पी गई सिगरेट का पीछे बचा अधजला टुकड़ा पीने की कोशिश करते हैं। यह प्रवृत्ति हमारे भीतर पिता के संस्कारों को आरोपित करती है। बच्चा हमेशा पिता के पदचिह्नों का अनुसरण करना चाहता है। फिर चाहे वे पदचिह्न अच्छे हों या बुरे। जिनके साथ हम रहेंगे, उनका असर तो आयेगा ही। महात्मा गाँधी कहा करते थे कि उन्होंने बचपन में अपने ही नौकरों की अधजली, अधफूँकी बीड़ी-सिगरेट के टुकड़ों को पीया था यानी सिगरेट ने सिगरेट का संस्कार दिया।

यह तो हुआ वातावरण का प्रभाव। कुछ संस्कार ऐसे भी होते हैं, जिनका संबंध पूर्व जन्म से जुड़ा होता है। महात्मा बुद्ध और महावीर के बारे में जन्म से ही यह भविष्यवाणी कर दी गई थी कि वे अपने यौवन-काल में संन्यास ग्रहण कर लेंगे। उनके महाराजा माता-पिता ने उनके ऐसा न करने के लिए पूरा प्रबंध किया। भोग-उपभोग और श्रृंगार का हर निमित्त उत्पन्न किया गया, लेकिन इसके बावजूद पूर्व जन्म के संस्कार हावी और प्रभावी रहे। वे संत और अरिहंत हुए। संस्कार चाहे बेहतर हों या बदतर, इस जन्म के हों या पूर्व जन्म के, जीवन में व्यक्त हुए बिना नहीं रहते।

यह भी संभव है कि व्यक्ति के माता-पिता में से उस पर किसी एक का ही असर हो। जरूरी नहीं है कि पिता यदि व्यसनी और कामुक प्रवृत्ति के रहे हों, तो उसकी संतान भी वैसी ही हो। मैंने पाया है कि एक पिता गलत प्रवृत्ति के व्यक्ति थे, किंतु उसकी संतान बड़ी सात्विक प्रवृत्ति की रही। मैंने अनुसंधान करना चाहा कि पिता और पुत्र के बीच यह संस्कार-भेद कैसे हो पाया। मुझे जानकारी मिली कि उन संतानों की माँ बड़ी धार्मिक और सात्विक प्रवृत्ति की महिला थी।

एक परिवार में, मैंने देखा कि माता-पिता तो अत्यंत धर्मपरायण और सरल सात्विक प्रवृत्ति के व्यक्ति रहे, लेकिन उनकी पाँच संतानों में से दो संतानें बदचलन प्रवृत्ति की रहीं। इसका कारण जानना चाहा, तो पाया कि वे दो व्यक्ति बचपन में बुरे लड़कों की संगत में चले गये, इसलिए ऐसे हो गये।

किसी परिवार में जहाँ चार संतान होती हैं, इस बात को देखकर आप चकित हो उठेंगे कि सबकी विचारधाराएँ अलग, जीवन की दृष्टि और तौर-तरीके अलग। आखिर इसका कारण क्या? इसे माता-पिता का परिणाम माना जाए या संगति का असर? उनमें जो भिन्नता दिखाई देती है, वह न तो संगत अथवा वातावरण का असर है और न

ही आनुवंशिकता का। यह सबके पूर्व जन्म के अपने-अपने संस्कारों का परिणाम है। जिसके जैसे संस्कार होते हैं, वैसी ही उसकी प्रकृति और नियति बन जाती है।

## संस्कार-सुधार का पहला प्रयास स्वयं से

कौन व्यक्ति यह नहीं चाहता कि उसकी भावी पीढ़ी सही, सुशील और गरिमापूर्ण न हो। चाहता तो हर कोई है, पर केवल चाह लेने भर से क्या होगा ! हमें अपने और अपने घर वालों से शुरुआत करनी होगी। हमें अपने भाई, बहिन और बच्चों के संस्कारों को परिष्कृत करने के लिए प्रयत्नशील होना होगा। हमें संसार के संस्कारों को सुधारने के लिए अपने आपको संस्कारित करना होगा। स्वयं को सुधारने का दायित्व तो आखिर स्वयं पर ही जाता है।

एक पिता वह होता है जो संतान को केवल जन्म देता है; दूसरा पिता वह होता है, जो अपनी संतति को संपत्ति देता है, जबकि तीसरा, पर सर्वोत्तम पिता वह होता है, जो अपनी संतान को सही संस्कार देता है। जन्म देने वाले पिता भुला दिये जाते हैं, संपत्ति देने वाले पिता लड़ाई-झगड़े की नींव रख जाते हैं, संस्कार देने वाले पिता गुरु का भी दायित्व निभा लेते हैं। संस्कारशील संतान हमारी श्रेष्ठतम निर्मिति है। वे हमें जीते-जी तो सुख पहुँचाते ही हैं, मरणोपरान्त भी न केवल हमें याद करते हैं, वरन् हमारी गौरव-गाथा को अक्षुण्ण बनाये रखते हैं।

जीवन के सम्यक् संस्कार के लिए हम पड़तालें कि हममें कौन-सी बुरी आदतें घर चुकी हैं; हमारा उठना-बैठना कहीं उन लोगों के साथ तो नहीं है जो बदचलन हैं या जिनके इरादे नेक नहीं हैं ? हम सबसे पहले बुरी मित्र-मण्डली से बचें। सौ बुरे मित्रों की बजाय अकेला रहना जीवन के लिए ज्यादा श्रेष्ठ है। ठीक है जीवन में मित्र होना चाहिए, पर ऐसे मित्रों का बोझ क्यों ढोयें, जो हमारे संस्कारों और हमारी गरिमा के लिए आत्मघातक हों। नहाना अच्छी बात है, पर गंदे पानी से नहाने की बजाय न नहाना ही ज्यादा श्रेष्ठ है।

## फिर से दीप जलाएँ

संभव है हममें कोई बुराई घर कर चुकी हो। अगर ऐसा है तो इसके लिए हम आत्मग्लानि का अनुभव न करें। बुराई आ जाया करती है। आज बुराई है तो क्या हुआ, हम जीवन के प्रति नेक दृष्टि अपनाकर अच्छाई भी आत्मसात कर लेंगे। बुरा कोई जीवनभर बुरा थोड़े ही रह सकेगा। अच्छाई के प्रयास हों, तो बुराई को बदलने में कितना सुधरे संस्कार-धारा

वक्त लगता है । यह चमत्कार हमारी निर्मल दृष्टि व निर्मल सोच से ही संभव हो सकेगा । आओ, हम जीवन में फिर से दीया जलाएँ; घर-घर और घट-घट दीप जलाएँ । शुरुआत अपने आप से करें ।

हम अपने क्रोध-आक्रोश का त्याग करें; दुर्वचन-दुर्भाषा का त्याग करें; दुराचार और दुर्व्यवहार का त्याग करें; मन में पलने वाली घृणा और घमंड का त्याग करें । हम पेश आएँ सबके साथ विनम्रता और शालीनता से । हमारा विनम्र प्रस्तुतिकरण लोगों के हृदय में हमारा स्थान बनाएगा । यदि कोई गलत भाषा या गलत व्यवहार का आचरण कर भी डाले, तो हममें इतनी सहन-शक्ति हो कि हम उसे माफ भी कर सकें । परिस्थितियाँ चाहे जैसी उपस्थित हो जाएँ, लेकिन ध्यान रखें कि किसी भी परिस्थिति को अपनी प्रसन्नता छीनने का अधिकार न दें । व्यक्ति की शालीनता और विनम्रता ही उसकी मधुरता है; उसकी प्रसन्नता और सहिष्णुता ही उसकी कुलीनता और गुणवत्ता है । आखिर कोई तुम्हारे बोल-बर्ताव, आचार-विचार को देखकर ही कहेगा कि तुम कैसे हो । अच्छाई से बढ़कर कोई ऊँचाई नहीं होती । ऊँचा उठने के लिए अच्छा बनना अनिवार्य पहलू है ।

दुनिया में महान से महान लोग हुए हैं । वे हमारे जीवन के आदर्श बनें । संभव है हम उन जैसा आदर्श न भी बन पाएँ, लेकिन उनके आदर्शों के प्रकाश में अपने जीवन की दिशा तो निर्धारित कर ही सकते हैं, पार लग ही सकते हैं । क्यों न तुम मुझे ही अपना मित्र बना लो । शायद मैं तुम्हारी संस्कार-शुद्धि की कोई कीमिया दवा बन जाऊँ । अच्छा गुरु और अच्छा शिष्य—दोनों एक-दूसरे से सीखते हैं । कुछ तुम्हें मुझसे सीख मिल जाए और कुछ मुझे तुमसे । क्या यह निमंत्रण स्वीकार करोगे ?

हर नई सुबह हमें संदेश देती है—आओ, हम फिर से कोशिश करें ।



# प्रेम से बढ़कर प्रार्थना क्या !

---

प्रेम परमेश्वर की प्रार्थना है  
और सहानुभूति मानवता का सौन्दर्य !

---

**हर** मनुष्य की अपनी जिजीविषा है । न केवल मनुष्य की, वरन् धरती पर रहने वाले हर प्राणी की जीने की समान इच्छा है । सभी जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता । मरने की केवल वही सोचता है जो जीवन और जगत की आपाधापी से या तो ऊब चुका है या संतुष्ट हो चुका है । जीना प्राणिमात्र का अधिकार है, मृत्यु जीवन का आखिरी पड़ाव है, लेकिन इसके बावजूद मृत्यु की प्राप्ति किसी की भी अपेक्षा और अभीप्सा नहीं है । मनुष्य जीना चाहता है और उसे जीने का पूरा अधिकार मिलना चाहिए ।

आखिर ऐसा कौन-सा मनुष्य है जिसे मृत्यु प्रिय हो ? क्या आप चाहते हैं कि किसी के द्वारा आपको कष्ट पहुँचे ? जब कोई अपने लिए रंच भर भी कष्ट नहीं चाहता, तो ऐसी स्थिति में भला कोई किसी के द्वारा मृत्यु की अपेक्षा कैसे रख पाएगा । जैसे हमारी अपेक्षा है कि हमें किसी के द्वारा किंचित् भी कष्ट न पहुँचे, ध्यान रखें औरों की भी हमसे वैसी ही अपेक्षा है । हमसे भी कोई दुःख-दौर्मनस्य नहीं चाहता । अपेक्षाओं की तो समान रूप से आपूर्ति होती है । यदि हम अपने लिए औरों से सौम्य और सौहार्दपूर्ण व्यवहार चाहते हैं, तो स्वयं हम भी वैसा ही बर्ताव करने के उत्तराधिकारी बन जाते हैं । आखिर ताली तो दोनों हाथों से ही बजेगी ।

प्रेम से बढ़कर प्रार्थना क्या !

जब हम किसी के द्वारा अपने लिए कष्ट नहीं चाहते, तो हमें यह कतई अधिकार नहीं है कि हमारे द्वारा किसी और को कष्ट पहुँचे। जब हम स्वयं मरना नहीं चाहते, तो हमें किसी को मारने का अधिकार कहाँ से मिलेगा ! आखिर जीवन सबका समान है, सभी में जीने की समान इच्छा है। वह व्यक्ति निहायत स्वार्थी है, जो केवल अपनी पेट्टी भरना चाहता है। मानवता का तकाजा है कि व्यक्ति औरों के भी पेट की चिंता करे। इस हेतु होने वाली व्यवस्था में अपनी भी सहभागिता निभाए।

## सारी धरती प्रेम की प्यासी

मनुष्य ने स्वार्थ का ऐसा बुर्का ओढ़ लिया है कि उसे अपने और अपने निजी परिवार के कल्याण के अलावा कुछ सूझता ही नहीं। मनुष्य का फर्ज तो यह बनता है कि वह उन गरीबों के मांगल्य का भी ध्यान रखे, जो उसके पड़ौस में बसे हुए हैं। ईश्वर करे हर घर फले-फूले, पर सुखों का जो तरुवर हम अपने घर में लगाएँ, उसकी शीतल छाया पड़ौसियों के घरों तक भी पहुँचे।

माना कि फल मधुर होते हैं और फूल सुवासित, लेकिन इंसान पेड़ की उन पत्तियों की तरह बने जो हर किसी को समर्पित भाव से शीतल छाया दिया करते हैं। अगर तुमने वह कहानी सुन रखी हो जिसमें आदमी पड़ौसी की दो आँख फुड़वाने के लिए अपनी एक फुड़वाने को तैयार हो जाता है, तो इसे क्या तुम मानवीयता कहोगे ? इतना स्वार्थी तो जानवर भी न होगा।

तुम इंसान हो, तो इंसान के फर्ज और धर्म अदा करो। यह सारी धरती तुम्हारे प्रेम की प्यासी है। तुम अपने प्रेम और सहानुभूति की बौछारों से दुनिया का आँगन पुष्पित और सुरभित कर डालो। धरती पर आये हो तो कुछ करके जाओ कि जिससे आने वाली पीढ़ियाँ तुम्हें याद कर सकें और तुम्हारा नाम आने पर आस्था और आभार के दो अश्रु-पुष्प अर्पित कर सकें।

## सहानुभूति से बढ़कर सौंदर्य क्या !

इंसान के द्वारा इंसान को निभाना, इंसान द्वारा प्राणिमात्र से प्यार करना, इससे बड़ा धर्म और क्या होगा ! कोई व्यक्ति संन्यास ही क्यों न ले ले, पर जब-जब भी इस धरती पर जिस किसी दिव्य पुरुष ने बोधिलाभ और कैवल्य की आभा अर्जित की, अन्ततः वापस उसे मानवता की ही गोद में आना पड़ा; उसकी ज्ञान-दृष्टि ने उसे मानवता की सेवा के लिए ही संप्रेरित किया। आह, सेवा से बढ़कर सुख क्या, प्रेम से बढ़कर प्रार्थना क्या,

और सहानुभूति से बढ़कर सौंदर्य क्या ! जिसके हाथों में सेवा है और आँखों में प्रेम और सहानुभूति का माधुर्य उससे बढ़कर प्यारा इंसान कौन होगा ! ध्यान रखो, तुम्हारी काया जो अंततः राख हो जाने वाली है, अगर उसके द्वारा कुछ मानवता की सेवा हो जाए, तो इसे मृत्यु में से भी अमृत निकल आने वाला अवदान समझो ।

जब मैं किसी भी पीड़ित को देखता हूँ तो पीड़ा का ऐसा साधारणीकरण हो जाता है कि वह पीड़ा अपनी ही पीड़ा नजर आने लगती है और तब हृदय की करुणा उस पीड़ा को मिटाने के लिए कुछ-न-कुछ करना चाहती है । किसी भी पीड़ित के लिए अपनी ओर से जो कुछ भी हो जाए, वह सब अपनी ओर से सहानुभूति है । हमारी तो वह करुणा है और उसकी वह आवश्यकता ।

कोई अगर मुझसे पूछे कि प्रेम, दया और करुणा का व्यावहारिक स्वरूप क्या है, तो मेरा सीधा-सा विनम्र जवाब होगा—आत्मीयता भरी सहानुभूति । ज़रा दुनिया में देखो तो सही कि कितना दुःख और कितनी पीड़ा समाई हुई है । तुम्हें अगर सौ आँखों में सुख दिखाई देता है, तो हजार आँखों में दुःख है । सौ भरपूर दिखाई देते हैं, तो हजार जरूरतमंद । दुनिया में अमीरों से ज्यादा गरीब हैं, साधुजनों से ज्यादा असाधुजन हैं, पुण्यात्माओं से ज्यादा पापी हैं । सहानुभूति की जरूरत साधुजनों और पुण्यात्माओं के प्रति नहीं, वरन उन दीन-दुःखी-असाधुजन-पापियों के प्रति ज्यादा है, जिन्हें कि वास्तव में इनकी जरूरत है ।

सहानुभूति तो स्वयं में साधुता का एक लक्षण है, अपने आप में पुण्य का चरण है । साधुजनों के प्रति सहानुभूति तो असाधुओं के हृदय में भी जग जाएगी । तुम्हारी साधुता की परिपक्वता तो इसमें है कि तुम अपनी सहानुभूति के पात्र उन्हें बनाओ जो दीन-दुःखी, रुग्ण या पापी हैं । तुम रावण में भी राम को ढूँढ़ निकालो । संभव है तुम्हारी सहानुभूति और साधुता का सौहार्द पाकर उनके जीवन का कायाकल्प हो जाए, उनके तन-मन और परिस्थिति का रूपान्तरण हो जाए ।

जब तक माँ भगवती मदर टेरेसा ने इंसानियत की सेवा के लिए स्वयं को समर्पित किया, तो उनकी स्थिति ऐसी थी कि वे किसी फूलों की बगिया में नहीं, वरन कंटीली झाड़ियों से घिरे जंगल में खड़ी थी और लोगों ने उस ममता की देवी पर सैंकड़ों इलजाम लगाये, लेकिन वह जानती थी कि उसकी वास्तविक जरूरत उन्हीं को है, जो उस पर इलजाम लगा रहे हैं । सेवा और सहानुभूति का मदर टेरेसा से ज्यादा और कोई जीवंत उदाहरण नहीं होगा । ईसा मसीह के प्रेम और सेवा के सिद्धांतों को अपने जीवन में जीने प्रेम से बढ़कर प्रार्थना क्या !



वाली ऐसी शख्सियत कोई विरली ही हुई होगी। उसने केवल प्यासों को पानी, भूखों को रोटी और नंगों को कपड़े ही नहीं दिये, वरन उन लोगों की उल्टियों और दस्तों को भी बेझिझक साफ किया, जो कि उसके कट्टर विद्वेषी और विरोधी थे।

ओह, क्या हम महात्मा गांधी से कुछ प्रेरणा लेना नहीं चाहेंगे, जिन्होंने शौचालयों को साफ़ करने वाली अछूत जाति को भी हरिजन (हरिभक्त) की संज्ञा दी और छुआछूत के भेद मिटाकर अपनी सहानुभूति की बाँहों से सबको एक आँगन पर ला खड़ा किया। मैंने तो सुना है कि गांधी ने जब भाईचारा और सफाई का अभियान चलाया था, तो उन्होंने किसी बूढ़े हरिजन के घर-आँगन में भी बुहारी लगाई थी। जब किसी बंधु ने उन पर मल-मूत्र का भरा पात्र उड़ेल दिया, तब भी 'हिंदु-मुस्लिम भाई-भाई' के उनके मानवीय अभियान में कोई कमी या कमजोरी नहीं आई। दुनिया में गांधी को न समझा जा सका, इसलिए उनकी हत्या की गई, पर हकीकत में गांधी इस नये युग के महावीर थे।

भगवान जीसस का यह कथन कितना भावभीना है कि मैं धरती पर पापियों को उनके पापों का प्रायश्चित्त कराने आया हूँ। उन्होंने स्वयं की इबादत करने वाले लोगों से इतना ही कहा कि मुझे न तो तुम्हारे फूलों की जरूरत है, न मिष्ठान और मोमबत्तियों की। तुम केवल मेरे कदमों में उन पापों को चढ़ाओ, जिन्हें तुमने अपनी अज्ञान-अवस्था में किये हैं। मैं तुमसे तुम्हारे पाप इसलिए प्राप्त करना चाहता हूँ, ताकि तुम्हें पुण्यात्मा बनाने के लिए तुम्हारे पापों को माफ़ कर सकूँ।

कितने सुकोमल भाव हैं ये कि भगवान हमारे पापों को भी अपने लिए पुष्प बना रहे हैं और हमसे सदा-सदा के लिए हमारे पापों के पुष्पों को स्वीकार करके हमारे जीवन को मानो पुण्यमयी पूजा बना रहे हैं।

## पूजा-स्थल पुण्यात्माओं के लिए ही नहीं

जब किसी बूढ़े गरीब व्यक्ति को यह कहकर मंदिर और गिरजे से बाहर निकाला गया कि यह दिव्य स्थान तुम जैसे पापियों के लिए नहीं है, तो उस बूढ़े फकीर की आवाज़ ने दुनिया भर के मंदिर, मस्जिद और गिरजाघरों के द्वार खुलवा दिये। उसने कहा—पुजारी, अगर मंदिर-मस्जिद के द्वार हम पापियों के लिए नहीं खुले हैं, तो तुम्हीं बताओ कि ये मंदिर-मस्जिद-गिरजे किस पुण्यात्मा के लिए हैं। अरे, पुण्यात्माओं को तो अपने पुण्य बखानने और भोगने के सौ-सौ स्थान हैं। हम पापियों को अपने पापों का प्रायश्चित्त करने के लिए आखिर यही तो एक ठौर है।

अगर पापियों के लिए ईश्वर के द्वार बंद कर दिए गये, तो पुजारी, ध्यान रखो पापी और पाप करते जाएँगे। हम पापियों को तुम्हारी सहानुभूति की ज़रूरत है। हमें निष्पाप होने में तुम हमारी मदद करो।

## सहानुभूति में पात्रता का विचार न हो

पाप तो पुण्य की ही पूर्व अवस्था है। आखिर कौन पुण्यात्मा ऐसा है, जो पहले कभी पापी न रहा हो! अज्ञान-अवस्था में पाप हो जाया करते हैं। जीवन का होश आ जाए तो पाप की धारा बदल जाती है। कल तक जो कदम गलत रास्तों पर चलते थे, वे उनसे विमुख हो जाते हैं। तब उनके जो कदम होते हैं, वे ही पुण्य कहलाते हैं। निश्चय ही आज जो पापी हैं, वे हमारे पुण्य की संगत पाकर बहुत कुछ मुमकिन है कि वे पापमुक्त हो जाएँ। सहानुभूति स्वयं में पुण्य है और गैरों के प्रति सहानुभूति रखना पुण्यात्माओं का ही कार्य है।

सच्चा पुण्यात्मा सबसे सहानुभूति रखता है। वह औरों से सहानुभूति प्राप्त करने की अपेक्षा नहीं रखता। वह यह भलीभाँति जानता है कि जो आज दुःखी है, मुझे उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। मैं भी कभी दुःखी था, पर जैसे मैं अपने दुःखों से मुक्त हो गया, वैसे ही यह भी हो जाएगा; मैं भी कभी बुरा था, पर जैसे मैं अपनी बुराइयों से छूट गया, वैसे ही कभी यह भी छूट जाएगा। आखिर यही अकेला कष्ट नहीं भोग रहा है, मैंने भी कष्टों के काँटों को सहन किया है, पर जैसे आज मेरे जीवन में सुख-शांति और आनंद के फूल खिल आए हैं, ऐसे ही कभी इसके जीवन में भी खिल आएँगे। फिर दुनिया में कौन भला, कौन बुरा! सब नियति का खेल है। कम-से-कम मैं ऐसा दुष्पात्र न बनूँ कि कोई और मेरी कोमल सहानुभूति से वंचित रहे। अगर ऐसा हुआ तो किसी एक पात्र के सामने मेरी अपात्रता सिद्ध हो जाएगी। महावीर का यह वचन हमें सदा इस हेतु प्रेरित और प्रोत्साहित करता रहेगा कि गृहस्थ तो देने मात्र से ही धन्य हो जाता है, उसमें पात्र-अपात्र का विचार क्या!

ईश्वर करे हम स्वयं सुख से जीएँ और औरों के सुख से जीने के अधिकार की रक्षा करें। प्रेम, सेवा और सहानुभूति को हम अपना धर्म मानें। प्रेम से बढ़कर कोई धर्म नहीं, प्रेम से बढ़कर कोई प्रसाद नहीं। हम स्वार्थ के गलियारे से बाहर आएँ, औरों के द्वारा किये जाने क्षुद्र व्यवहार के प्रति भी करुणा रखें। मेरे द्वारा औरों का भला हो, यह सजगता बरकरार रहे।



प्रेम से बढ़कर प्रार्थना क्या !

# मन की धरा रहे उर्वर

---

हर कार्य को इतने उल्लसित मन से करो  
कि कार्य स्वयं मुक्ति का द्वार बन जाए

---

**जी**वन परम मूल्यवान है। यद्यपि हर वस्तु का अपना मूल्य है, किंतु जीवन का मूल्य सर्वोपरि है। हमारा जीवन हमारे लिए प्रकृति की एक स्वर्णिम सौगात है। जिन्होंने जीवन को प्यार से जीया है, उत्साह-उल्लास और आत्मविश्वास के साथ जीया है, वे भलीभांति जानते हैं कि जीवन में अद्भुत सौंदर्य और माधुर्य है। इसका अपना अनूठा संगीत है, इसका अपना अनुपम आनंद है। जो जीवन को जीवन के भाव से नहीं जी पाते, उनके पास वे कान नहीं होते, जिनसे कि वे जीवन का संगीत सुन सकें, वह आँख नहीं होती, जिससे कि वे जीवन के सौंदर्य का पान कर सकें; वह हृदय नहीं होता जिससे कि वे माधुर्य और आनंद को जी सकें।

## स्वस्थ जीवन : स्वस्थ मानसिकता

हम ज़रा अपने व्यवहार और मानसिक जगत की स्थिति का निरीक्षण करें कि हमारे जीवन में घुटन है या सौंदर्य; तनाव है या माधुर्य; आक्रोश है कि आनंद, कर्कशता है कि समरसता? जीवन की चाहे जो स्थिति हो, यदि वह प्रतिकूल हो और नकारात्मक, उसकी दशा और दिशा को बदला जा सकता है। यदि जीवन में सौंदर्य और माधुर्य का राज समझ में आ जाए, तो अपने आप ही चित्त की आकुलता-व्याकुलता का विलोप हो जाएगा। आखिर जीवन में अंधकार तभी तक रहता है, जब तक जीवन के घर-आँगन

में दो दीए न जल जाएँ ।

संभव है आप काफी संभ्रांत और प्रतिष्ठित व्यक्ति हों, पर कहीं ऐसा तो नहीं कि मानसिक अवसाद ने आपको घेर लिया हो ? अपने मानसिक तनाव को मिटाने के लिए आपको किसी दवा-दारू का उपयोग करना पड़ रहा हो या रात को सोने के लिए नींद की गोली खानी पड़ रही हो ? अगर ऐसा है, तो कृपया अपनी स्थिति का जायजा लें, अपनी उन खामियों पर ध्यान दें, जिन्होंने आपको और आपके जीवन को कष्टकर बना दिया है । कुछ अपने साथ ऐसे प्रयोग करें कि जिनके द्वारा आप अपने अंतर-मन के रोगों को मिटा सकें । स्वस्थ जीवन के लिए व्यक्ति की मानसिकता का स्वस्थ होना जरूरी है । जीवन, जगत और प्रकृति के नियमों को समझकर व्यक्ति अपने मन की हर पेचीदगी से बच सकता है और इस तरह शांत, मुक्त, आनंदित जीवन का स्वामी बन सकता है ।

## हर कार्य हो उल्लसित मन से

बोझिल मन से किया गया काम और जिया गया जीवन भला क्या काम का ! सुखी जीवन का स्वामी तो वही है जो अपने चित्त में किसी तरह का बोझ नहीं रखता; शांत, निश्चित और हर हाल में मस्त रहता है । जिसके जीवन में तनाव और घुटन है, उसकी स्थिति उस सरोवर की तरह होती है, जिसका पानी सूख चला हो । उसके मनोमस्तिष्क की वही स्थिति होती है, जैसे पानी के सूख जाने पर मिट्टी की । कभी आपने ध्यान दिया हो, ऐसे किसी तालाब पर जिसमें पानी नहीं है और मिट्टी की सतह पर दरारें पड़ी हों । तनावग्रस्त व्यक्ति के मनो-मस्तिष्क की भी यही स्थिति होती है ।

हम अपने दैनंदिन जीवन में क्या करते हैं, इससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण यह है कि हम किस मन और किस भाव से करते हैं । बेमन से किया गया कार्य आदमी के लिए भारभूत हो जाता है, वहीं उल्लसित मन से किया गया कार्य सुख का सेतु बन जाता है । इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि कार्य छोटा है या बड़ा, फर्क इससे पड़ता है कि कार्य करने वालों का मन छोटा है या बड़ा । बड़े दिल से किये गये छोटे कार्य भी आदर्श हो जाया करते हैं । छोटे मन से किये गये बड़े कार्य भी तुच्छ और व्यर्थ साबित हो जाते हैं ।

क्या हम बुद्धि के आईने में यह देखना पसंद करेंगे कि हमारे जीवन के कार्य और कर्तव्य क्या हैं और हम जो कार्य करने वाले हैं, का मन कैसा है ? हम अपने जीवन के

छोटे-से-छोटे कार्य को भी इतने उच्च मन से संपन्न करें कि हमारा हर कार्य शांति-आनंद और मुक्ति की किरण बन जाए ।

## मन में हैं रोगों के बीज

क्या हम यह राज की बात समझना चाहेंगे कि जीवन के जितने रोग हैं, उन सबके बीज हमारे अपने ही मन में समाए हुए हैं । हम अपने मन के लक्षणों को समझकर शरीर के रोगों की चिकित्सा कर सकते हैं । अपने मन में पलने वाले भय पर विजय प्राप्त करके हम अपनी दस्त की शिकायत पर अंकुश लगा सकते हैं; क्रोध-आक्रोश को मिटाकर जीवन को चैतन्य-कणों से आपूरित कर सकते हैं । द्वेष-भाव और मोह का त्याग करके अनिद्रा रोग का निवारण कर सकते हैं । ये जो बातें हैं वे अत्यंत वैज्ञानिक/ मनोवैज्ञानिक हैं ।

तुम ताज्जुब करोगे कि जब कभी तुम्हारा चित्त भयभीत हुआ, तुम्हारा जी मचलने लगा और तभी तुम्हें शौच की शंका हो गई । तुम पाते हो कि चित्त में विकार की तरंग उठते ही श्वासों की गति असंतुलित हो गई, रक्तचाप की गति बढ़ गई और तुम्हारा तन-मन अनियंत्रित हो गया । मन के रोग और विकार शरीर पर उतरकर आते हैं । स्वस्थ जीवन के लिए व्यक्ति के शरीर और मन—दोनों का स्वस्थ होना जरूरी है ।

हाल ही में जर्मनी के एक महान् चिकित्सा-विज्ञानी डॉ. बैच ने अपने गहरे अनुसंधान के बाद फ्लावर रेमेडीज चिकित्सा-पद्धति विकसित की । इस पद्धति से आम व्यक्ति के मानसिक और न्यूरो-फिजीकल रोगों का उपचार तो होता ही है, व्यक्ति की शारीरिक बीमारियों पर भी काफी-कुछ नियंत्रण किया जा सकता है । इस पद्धति का सार-सूत्र इतना ही है कि व्यक्ति के मानसिक लक्षणों के आधार पर शारीरिक रोगों की चिकित्सा हो । यह चिकित्सा-पद्धति हाल ही में बहुत कारगर सिद्ध हुई है । भारत में भी कई शहरों में इस पद्धति के केंद्र संचालित हैं । जोधपुर स्थित संबोधि-धाम में भी हाल ही इसका नया केन्द्र स्थापित हुआ है ।

## चिंताओं की चिता जलाएँ

चाहे व्यक्ति औषधि का उपयोग करे या सम्यक् समझ का, मूल बात मनोदशा को सुधारने की है । हृदय की दशा बदल जाए, सुधर जाए तो जीवन की हर गतिविधि का स्वरूप ही परिवर्तित और संस्कारित हो जाता है । सीधी-सी बात है कि आईने को बदलने से चेहरे नहीं बदला करते हैं, चेहरा बदल जाए तो आईना अपने आप ही बदल

जाता है । हम कृपया अपने आपको उत्साह और उल्लास से भरें; साहस और विश्वास से आपूरित करें; अपनी इच्छा-शक्ति को प्रखर करें, फिर देखें जीवन का कौन-सा कार्य दुष्कर है, कष्टकर है, असाध्य है ।

जीवन के सहज सौंदर्य को प्रगट करने के लिए चित्त में पलने वाली चिंताओं की चिता जला डालें । जीवन का सत्य तो यह कहता है कि चिंता तो स्वयं चिता ही है । काष्ठ की चिता घंटों में जल जाया करती है, पर भूसे की चिता जलती नहीं, केवल धुँवाती है । हृदय में चिंता को पालना तो भूसे को ही सुलगाना है यानी एक ऐसी चिता की व्यवस्था करना है जो न तो पूरा जलाती है और न जीने जैसा रखती है ।

कोई व्यक्ति अगर किसी सार्थक पहलू पर चिंता करे, तो समझ में भी आती है, पर व्यर्थ की बीती-अनबीती बातों पर दिन-रात घुटते रहने का कहाँ औचित्य है । आखिर जो बीत चला उसे लाख याद करने पर भी लौटाया नहीं जा सकता, जो अनबीता है उस आने वाले कल को आखिर खींचकर तो आज बनाया नहीं जा सकता । अब जिसकी पत्नी मर गई उसके लिए यह सोच-सोचकर व्याकुल रहना कि तू तो मर गई, लेकिन मेरी रातें हराम कर गई, क्या इस व्याकुलता का कोई अर्थ है ? सिवाय आत्मक्षति के कोई परिणाम नहीं है ।

अब जिसके घर बेटी पैदा हो गई वह इस बात को लेकर चिंतित रहता है कि बेटी को कैसे ~~से~~ बड़ा करूँगा, पढ़ाऊँगा, ब्याह करूँगा । ओह, प्रकृति जो दे उसकी व्यवस्था की चिंता करना उसे देने वाले का काम है, न कि हमारा । आखिर जो जीवन देता है वह जीवन की व्यवस्था भी देता है । जहाँ प्यास है, वहाँ पानी भी है; जहाँ धूप है वहाँ उससे बचाने के लिए शीतल छाँह की भी व्यवस्था है । फिर चिंता किस बात की ! भला किसी की बेटी धन के अभाव में कुँआरी रही है ? मेरी शांति और निश्चितता का एक छोटा-सा मंत्र रहा है—जो जीवन देता है, वह जीवन की व्यवस्था भी देता है । मैं पैदा हुआ उससे पहले मेरी माँ की छाती दूध से भर गई । जिस व्यवस्थापक की ओर से जीवन के प्रथम चरण में ही इतने पुख्ता बंदोबस्त हैं, फिर चिंता किस बात की । मस्त रहो मस्त, पूरी तरह निश्चित !

## हीन न मानें, आत्मविश्वास की अलख जगाएँ

इस क्रम में अगला संकेत यह है कि हम अपने हृदय में हीन-भावना को स्थान न दें । मैं छोटा वह बड़ा, मैं निर्बल वह बलवान, मैं गरीब वह धनवान, मैं साँवला वह

रूपवान, मैं छोटी जाति का, वह उच्च कुलवान ! मन के द्वारा किया जाने वाला यह भेद ही आदमी को हीनता की ग्रंथि से घेर लेता है । रंग-रूप-जाति के ये जो भेद हैं, ये किसी दुनिया के द्वारा स्थापित नहीं, वरन् आदमी के कमजोर मन के द्वारा खड़ी की गई दीवारें हैं । कोई भी आदमी महज अपने रंग-रूप-जाति के कारण ऊँचा और महान नहीं हो सकता । आदमी का जीवन, उसके गुण और उसके कर्म ही आदमी को ऊँचा या नीचा बनाते हैं । आखिर मूल्य सदा ज्योति का होता है, दीयों का नहीं । इससे कहाँ फर्क पड़ता है कि दीया मिट्टी का है या चाँदी का । सच्चा स्वर्णदीप तो वही है, जो ज्योतिर्मय हो, फिर चाहे वह मिट्टी का ही क्यों न बना हो ।

किसी पद पर बैठने से व्यक्ति कभी बड़ा नहीं होता, किसी बड़े पद के कारण आदमी भले ही बड़ा कहला ले, लेकिन पद से नीचे उतरते ही हम अच्छी तरह जानते हैं कि उसकी कीमत कितनी रहती है । जिसमें आदमियत है, जिसका अपना गुण-वैशिष्ट्य है, वह कभी पद से नहीं, वरन् पद ही उससे गौरवान्वित होता है । हम किसी को देखकर अपने आपको छोटा, तुच्छ या हीन मानने की बजाय आत्मविश्वास की उस अलख को जगाएँ, जो हमें अन्य आगे बढ़ते हुए लोगों से और आगे बढ़ा सके; कुछ नया और मौलिक कर दिखाने का मार्ग बता सके ।

आज व्यक्ति की पहली आवश्यकता ही उसके खोये हुए आत्मविश्वास को लौटाने की है । भला जिसे अपने आप पर ही विश्वास नहीं, वह दुनिया में क्या कर पाएगा । वह मात्र दबू बनकर रह जाएगा । हम बंध्या का जीवन न जीएँ । हमें अपनी ओर से कुछ नया ईजाद करना है । हम आत्म-विश्वास को हृदय में प्रतिष्ठित करें और वैसा करने के लिए तत्पर हो जाएँ । हृदय में पलने वाली हीनता को हटाना और मन में घर कर चुकी चिंताओं से मुक्त होना जीवन की अस्मिता को प्राप्त करने के प्राथमिक चरण हैं । निर्भयता, निश्चितता और निष्ठापूर्ण जीवन स्वतः ही जीवन को संगीत और सौंदर्य से भर देता है, माधुर्य और आनंद का मालिक बना देता है ।



# दो मंत्र : मन की शांति के लिए

---

हर हाल में मस्त रहो—मन की शांति पाने का  
यह प्रथम और अन्तिम मंत्र है ।

---

**जी**वन में एक ही वस्तु ऐसी है, जिसे प्राप्त कर व्यक्ति स्वयं को क्षण-प्रतिक्षण धन्य महसूस करता है और वही एकमात्र ऐसी वस्तु है जिसके अभाव में व्यक्ति स्वयं को मरघट का मुसाफिर अनुभव करता है । क्या आप बता सकते हैं, वह वस्तु क्या है ? मेरे देखे, वह वस्तु है—मन की शांति ।

## अनुपम वैभव-मन की शांति

व्यक्ति के मन में शांति है, तो जीवन की थोड़ी-सी सुविधाएँ भी पर्याप्त और सुकूनदेह हो जाती हैं । जिसके जीवन में शांति नहीं, वह अकूत धन-खजाने का मालिक होकर भी खिन्न और दुःखी है । शांति जीवन का सबसे बड़ा वैभव है । आपको ऐसे अनगिनत लोग मिल जाएँगे, जिनके पास अथाह सुख-सुविधाएँ हैं; पैसा भी इतना है कि उनकी सात पीढ़ियाँ भी खाती रहें, तो भी न खूटे, लेकिन आप यह जानकर ताज्जुब करेंगे कि वे मात्र दवाइयों की गोलियाँ खाकर जी रहे हैं । उन्हें दिन में चैन नहीं और रात में नींद नहीं । वे अपने मानसिक तनावों को भुलाने के लिए शराब के शरणागत बने रहते हैं । आखिर उन्हें क्या चाहिए ? केवल एक ही वस्तु की तो उन्हें जरूरत है और वह है—मन की शांति । यह एक ऐसी वस्तु है जिसे न खरीदा जा सकता है, न बेचा; जिसका न उत्पादन हो सकता है, न ही संग्रह; जिसे पाने के लिए न तो नौकरी करनी



पड़ती है, न ही पलायन ।

लोग शांति की प्राप्ति के लिए न जाने कितने तीर्थ-धाम कर आते हैं और कितनों को ही गुरु बनाते फिरते हैं । मन की शांति का संबंध किसी स्थान या व्यक्ति-विशेष से नहीं है । शांति का संबंध व्यक्ति का अपने आप से है, स्वयं के मन को समझने और समझाने से है । किसी अरबपति व्यक्ति को यदि तुम उसके मन की शांति प्रदान कर दो, तो तुम्हें मुँह-मांगा इनाम मिल सकता है, क्योंकि एक अतिसंपन्न व्यक्ति ही इस बात का मूल्य पहचानता है कि मन की शांति की कितनी अनूठी कीमत है । मन की शांति वह बेशकीमती चीज है, जिसके आगे हजारों जवाहरात की कीमत नगण्य है ।

## दो दीप, दो मंत्र

मन की शांति के लिए हम जीवन में दो कीमिया का उपयोग कर सकते हैं, जिनमें पहला है सहजता और दूसरा है—निमित्तों से प्रभावित न होना, प्रतिक्रियाओं से मुक्त रहना । मैं इन दो बातों को जीवन में शांति के दो मूल मंत्र कहूँगा । जैसे रात के अंधेरे में राह पर चलने के लिए कंदील सहायक होता है, ऐसे ही ये दो बातें शांति की साधना के लिए जीवन-पथ के दो दीयों का काम करती हैं ।

## आत्मसात हो जाए सहजता

पहला मंत्र है—सहजता । जीवन में जो होना है, वह हो ले । उतार-चढ़ाव, हानि-लाभ, सुख-दुःख, संयोग-वियोग—ये सब तो जीवन से जुड़े हुए सनातन धर्म हैं । समय का स्वरूप सदा परिवर्तनशील रहा है । जिसने इस परिवर्तन-धर्म को समझ लिया, वह हर परिस्थिति में अपनी सहजता को बरकरार रख सकेगा । कृत्रिमता और कुटिलता भला कौन-सा सुख देती है ? जो सौंदर्य होंठों के सहज गुलाबीपन में छिपा होता है, वह लिपस्टिक की कृत्रिमता में कहाँ है ! हमारी कृत्रिम हंसी हमें बेवकूफ ही सिद्ध करेगी, वहीं हमारी सहज मुस्कान हमारे व्यक्तित्व के आकर्षण का केंद्र बन जाएगी । ज्यादा बन-ठनकर रहना, अपनी बात को बढ़ा-चढ़ाकर पेश करना कोढ़ के रोग पर कोट-पतलून पहनना है । जैसे छिपाकर रखा गया कोढ़ कभी-न-कभी तो प्रकट होता ही है, क्या यही हथ्र कुटिलता और कृत्रिमता का नहीं होगा ?

जीवन में सुख-शांति का स्वामी होना है, तो हम जीवन को बड़ी सहजता से लें । जीवन के हर कार्य की प्रस्तुति बड़ी सहजता से हो । औरों के द्वारा की जाने वाली हर टिप्पणी को हम बड़ी सहजता से लें । आत्मवान पुरुष वही है, जो किसी के द्वारा की गई

उपेक्षा और अपमान के बदले में भी सहज रहता है, अपनी सौम्यता को बरकरार रखता है। गीत के बदले में गीत हर कोई गुनगुनाता है, पर यदि तुम गाली के बदले में भी अपने गीत को जीवित रख सको, तो यह तुम्हारी आत्मविजय है। प्रेम के बदले में प्रेम देना आम है, पर जो क्रोध के बदले में भी करुणा की कोमलता दर्शाता है, उसी के जीने में मजा है। हम अगर कर सकें, तो अपने मित्रों की भूलों को माफ करें। जो हमें अपना शत्रु मानते हैं, हम उनके प्रति सद्व्यवहार की मिसाल कायम करें।

## सहज मिले अविनाशी

बड़ा प्रसिद्ध संदेश है—साधो, सहज समाधि भली। समाधि का रहस्य ही सहजता में छिपा हुआ है। हम जीवन को जितनी सहजता से लेंगे, तनाव और चिंता से उतने ही बचे हुए रह सकेंगे। योगी लोग तो हिमालय की कंदराओं में बैठकर समाधि को साधते होंगे, पर मैं तो यह कहूँगा कि हम अगर इस एकमात्र सहजता को आत्मसात कर लें, तो समाधि स्वतः हमारी सहचर रहेगी। हो-हल्ला, ढोल-ढमाका और माइकों पर जोर-शोर से मंत्र-पाठ करने वालों को भला कभी भगवान मिले हैं? मीरा की पंक्तियाँ कितनी प्यारी हैं—‘सहज मिले अविनाशी’।

वह अविनश्वर जब कभी जिसे मिला है, सहज ही मिला है। यह कितनी मधुर बात है कि जिस कृष्ण की उपासना में सुरेश, गणेश और महेश तत्पर हैं, वह कितनी सहजता से ग्वाल-बालाओं के साथ क्रीडारत हो जाता है। नीतिकारों का तो यही अनुभव रहा है—‘बिन माँगे मोती मिले, माँगे मिले न भीख।’ अथवा इसे यों कह दें—‘चींटी करे न चाकरी, अजगर करे न काम; दास मलूका कह गये, सबके दाता राम।’ संत कबीर का यह पद इस संदर्भ में सहज ही बड़ा संप्रेरक है—‘सहज मिले सो दूध सम, माँगा मिले सो पानी; कह कबीर वह रक्त सम, जामे खींचा-तानी।’

आप अपनी नौका को प्रभु पर छोड़कर तो देखें। प्रभु स्वयं हमें उस पार पहुँचाने को आतुर हैं। हम जीवन में आने वाले संकटों को भी प्रकृति की व्यवस्था का ही एक चरण मानें। हम बड़े-से-बड़े संकट को भी बड़ी सहजता से लें। हम स्वयं एक महान् चमत्कार देखेंगे कि प्रकृति ने हममें एक गहरा आत्म-सामर्थ्य आपूरित किया है। हम बड़े सहज, शांत और निर्भय-भाव से बड़े-से-बड़े संकट का सामना कर जाएँगे। काश, यदि लक्ष्मण अपने क्रोध को अपने काबू में रखते और हर प्रतिकूलता के बावजूद सहज बने रहते, तो शायद लक्ष्मण की आहुतियाँ, उनका त्याग और बलिदान श्रीराम से कहीं अधिक बखाना जाता। गंभीर-से-गंभीर और भयंकर-से-भयंकर परिस्थिति में भी अपने आपको सहज-सौम्य बनाये रखना मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीराम की सबसे बड़ी खासियत

रही ।

ओह, हम अपने जीवन के साथ सहजता से पेश क्योँ नहीं आते ! हम सदा निश्चित रहें । इस बात को सदा याद रखें कि जो हमें जीवन देता है, वह जीवन के साथ उसकी व्यवस्थाएँ भी देता है । मनुष्य माँ की कोख से बाद में पैदा होता है, माँ की छाती दूध से पहले भर जाती है । हम प्रकृति की व्यवस्थाओं में विश्वास करके तो देखें, हमारी व्यवस्थाएँ स्वतः न होने लगे, तो यह भी आजमाकर देखना । प्रकृति की व्यवस्थाएँ बड़ी सटीक होती हैं । जीवन में सारे द्वार एक साथ बंद नहीं होते । यदि एक बंद होता भी है, तो विश्वास रखें, दूसरा खुल भी जाता है । हमारा यह विश्वास और अन्तर्दृष्टि ही हमें अपने जीवन में सहजता और शांति का आचमन करा पाएगी ।

## न उलझें प्रतिक्रियाओं में

मन की शांति का स्वामी होने के लिए सहजता से जुड़ा हुआ जो दूसरा पहलू है, वह है—प्रतिक्रियाओं से परहेज रखना । क्रियाओं का होना स्वाभाविक है, किंतु प्रतिक्रियाओं का होना आत्मनियंत्रण का अभाव है । जो अपने आप पर काबू नहीं रख सकते, वही बात-बेबात में व्यर्थ की प्रतिक्रियाएँ करते रहते हैं । जो अपने जीवन में इस बात का बोध बनाये रखता है कि मैं क्रिया-प्रतिक्रिया के भंवर-जाल में नहीं उलझूँगा, वही अपने जीवन में शांति और आनंद को बरकरार रख पाएगा । प्रतिक्रिया ही तो आज हर परिवार और समाज की समस्या है । प्रतिक्रिया ने हमेशा परिवार और समाज को बाँटा है, हिंसा और तनाव को प्रोत्साहन दिया है, मानसिक और व्यावहारिक संतुलन को क्षति पहुँचाई है । जब भी प्रतिक्रियाएँ करेंगे, हम स्वयं को क्रोधित और अनियंत्रित पाएँगे; हमारा रक्तचाप बढ़ जाएगा । सावधान, कहीं ऐसा न हो कि हमें ब्रेन-हेमरेज हो जाए ।

क्या कभी आपने घर-परिवार पर ध्यान दिया कि घर में इतना तनाव और खिंचाव क्योँ है ? भाई-भाई में असंतुलन क्योँ है ? पिता और पुत्र के बीच अलगाव के क्या कारण हैं ? सीधा-सा जवाब है—बातों को न पचा पाना, छोटी-छोटी बात पर अनियंत्रित और प्रतिक्रियाशील हो उठना । तुम समाज की भी स्थिति देख लो, प्रतिक्रियाओं का पारा कितना चढ़ा हुआ है । कोई इधर खींचता है, कोई उधर; कोई इधर की हाँकता है, कोई उधर की । स्वस्थ शांति का सुकून कहाँ है ! सब अपनी-अपनी संकीर्णता और दायरे में उलझे हैं । उदार और विराट दृष्टि है किसमें ! आदमी की शांति को खंडित करने के लिए एक छोटा-सा निमित्त भी काफी हो जाता है । किसी सरोवर को हिलाने के लिए लम्बे-चौड़े तूफान की जरूरत नहीं होती, मिट्टी की एक ठीकरी ही पर्याप्त होती है ।

कौन क्या कहता है, इसकी ओर ध्यान देने की बजाय हम इस पर गौर फरमाएँ कि हमें क्या करना है। किसी के द्वारा हमें गलत कहे जाने पर हम गलत थोड़े ही हुए। जो आज हमें गलत कह रहा है, वक्त बदलते कितनी देर लगती है, वही हमें अच्छा भी कहने लग जाएगा। किसी के द्वारा हमें नालायक कहे जाने पर हम उससे भिड़ पड़े, तो निश्चय ही हमने अपनी नालायकी दर्शा दी। बाकी यह तो जगत की व्यवस्था है कि यहाँ सब कुछ प्रतिध्वनित होता है। जो-जैसा हमें कहता है, अगर हम उसे स्वीकार न करें, तो वह उसी पर लौटकर चला जाता है।

दुनिया के कहे-कहे ही अगर चलना शुरू कर दिया, तो जीना बड़ा कठिन हो जाएगा। दुनिया न तो किसी को जीने देती है, न ही मरने। जो स्थिति लिक्विड ऑक्सीजन में गिरने के बाद किसी की होती है, हमारी भी वैसी ही हो जाती है। लिक्विड हमें जीने नहीं देता और ऑक्सीजन हमें मरने नहीं देता। दुनिया का तो यह सनातन नियम रहा है कि हम यदि गधे पर चढ़ेंगे, तो भी दुनिया हँसेगी और हम यदि गधे को अपनी पीठ पर ढोएँगे, तो भी दुनिया हमें गधा कहेगी। हम तो वह करें, जिसे हम अपने वर्तमान और आने वाली पीढ़ी के लिए स्थापित करना चाहते हैं। हम किसी पुरानी लीक पर ही न चलते रहें, वरन् अपनी ओर से भी नई लीक का निर्माण करें, जिससे कि आने वाली पीढ़ी हमारी ऋणी रहे, हमारे पदचिह्नों का अनुसरण करे।

प्रतिक्रियाओं की चिनगारियों से बचने के लिए हम समता और सहिष्णुता के स्वामी बनें। औरों की गलतियों को माफ कर सकें, स्वयं में क्षमा का इतना सामर्थ्य लाएँ। हम स्वयं तो किसी की निंदा और आलोचना न ही करें, पर हमारे साथीदार किसी की निंदा करे तो अपनी ओर से बगैर कोई टिप्पणी किये स्वयं को वहाँ से हटा लें। यदि कोई हमारी तारीफ कर दे, तो उसे बड़ी सहजता से लें, वरना हमारा अहम् पुष्ट होता जाएगा। यदि कोई आलोचना करे, तो उसे भी बड़ी सहजता से लें, नहीं तो तुम्हें उत्तेजित और असंतुलित होने से कोई रोक नहीं सकेगा।

यह कुदरत की व्यवस्था है कि यहाँ परिस्थितियाँ सदा एक-सी नहीं रहतीं। यहाँ हाल बदलते हैं, हालात भी। शांति का स्वामी वही है जो निरपेक्ष रहता है हर परिस्थिति से। शांति के क्षणों में शांत हर कोई रहता है, जो अशांति के वातावरण में भी शांत बना रहे, उसी की बलिहारी है। हर हाल में मस्त रहो—मन की शांति को आत्मसात करने के लिए यही सारसूत्र है और यही सार-संदेश।

□

# कैसे करें चित्त का रूपान्तरण

---

चित्त पर आत्मविजय प्राप्त करने के लिए सदा प्रसन्न रहें,  
अपनी श्वास-धारा पर सजग रहें ।

---

**मनुष्य** एक है, किंतु उसका चित्त और चित्त की वृत्तियाँ अनेक हैं । चित्त की विभिन्न अभिव्यक्तियों को देखकर ही हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि चित्त एक अथवा अखंड नहीं है । चित्त जीवन की आंतरिक व्यवस्था है और इस व्यवस्था में कई तत्त्व सहभागी बनते हैं । मनुष्य का चित्त जीवन के अत्यधिक सशक्त, किंतु अत्यंत सूक्ष्म तत्वों का समुच्चय है । हर चित्त अपने आप में शुभ-अशुभ परमाणुओं की ढेरी है ।

## चित्त बड़ा बहुरूपिया

मनुष्य का चित्त परिवर्तनधर्मी है । वह कभी एक-सा नहीं रहता । जब-तब बदलते रहना उसका स्वभाव है । कब-कौन-से निमित्त की हवा चल पड़े और चित्त का कब-कौन-सा परमाणु मुखरित हो जाए, कहा नहीं जा सकता । चित्त बदलता है, परिस्थिति के अनुसार, बिल्कुल ऐसे ही कि जैसे गिरगिट अपना रंग बदलता है । मनुष्य का चित्त भी समय, क्षेत्र और परिस्थिति के अनुसार अपना स्वरूप बदलता है । यह क्रोध का निमित्त पाकर क्रोधित हो जाता है, तो करुणा का निमित्त पाकर दयार्द्र । यह विकार का निमित्त पाकर विकृत हो जाता है, वहीं सौहार्द का निमित्त पाकर सुहृद् । क्रोध और काम—ये भी चित्त के ही पर्याय हैं, वहीं प्रेम और शांति भी चित्त के ही धर्म । बड़ा बहुरूपिया है यह । चित्त के इतने-इतने रूप कि इसके आगे शिव-शंकर भी ठग जाएँ ।

## चित्त का स्वरूप जलाशय जैसा

व्यक्ति का चित्त जैसे ही प्रभावित या आंदोलित होता है, तो उसका व्यक्तित्व और आचार-व्यवहार सभी कुछ उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रहते । यदि मनुष्य का चित्त भयग्रस्त हो जाए, तो न केवल इस स्थिति में उसका शरीर सुस्त हो जाएगा, वरन उसे दस्तें भी लग सकती हैं, जी मचला सकता है । इतना ही नहीं वह अपने मित्रों और परिजनों के प्रति भी सशंकित हो उठेगा । उसे हवा का एक झौंका दस तरह के बहमों से भर देगा । यह हम भलीभांति जानते हैं कि व्यक्ति का चित्त जब क्रोधित हो जाता है, तो हमारे रक्त की गति, आँखें और वाणी-व्यवहार कितना असंतुलित-असंयमित हो जाता है ।

इसी तरह चित्त में जब वासना की तरंग उठती है, तो मन की स्थिति, बुद्धि का विवेक, शरीर का स्वास्थ्य, व्यवहार की पवित्रता सभी कुछ तो बाधित हो जाते हैं । तब मानो आँखों को कुछ सूझता ही नहीं । बुद्धि की आँखों में एक अलग ही तरह का अंधत्व उतर आता है । यह अंधत्व आखिर चित्त की ही परिणति है यानी चित्त का आंदोलित होना व्यक्ति के संपूर्ण जीवन-चरित्र को आंदोलित करने के समान होता है । जैसे जलाशय में फैंका गया पत्थर का एक छोटा टुकड़ा उसकी संपूर्ण सहजता को अस्थिर और तरंगित कर देता है, चित्त का स्वरूप भी उस जलाशय जैसा ही है ।

जीवन के केंद्र में चित्त की भूमिका प्रमुख रहने के कारण व्यक्ति का कब-क्या रूप होता है, इसकी कोई भविष्यवाणी नहीं की जा सकती । चूंकि मनुष्य बहुचित्तवान है, इसलिए उसके रूप भी बहुतेरे हैं । चित्त एक होकर भी अनगिनत रूपों को अपने में धारे है । अब भला यह बात कोई तय थोड़े ही है कि व्यक्ति का कब-क्या रूप होगा । चेहरा तो वही होता है, लेकिन सुबह उसका रूप अलग हो जाता है, तो दोपहर को अलग; साँझ को कुछ और ही और रात को किसी अन्य ही रूप में । जिस व्यक्ति को उसकी पत्नी ने सुबह दस बजे देखा, जब उसे ही रात को दस बजे वह देखती है, तो चौंक पड़ती है कि क्या यह वही है ? व्यक्ति के कितने रूप हैं, पहचाने नहीं जा सकते !

कोई व्यक्ति किसी के साथ पच्चीस साल जीकर भी यह नहीं कह सकता कि यही स्वरूप है इसका । औरों की तो छोड़ो, आदमी अपने आपको ही नहीं पहचान पाता । अरे, अभी जो व्यक्ति कुछ मिनट पहले सबसे प्यार से बोल रहा था, कहा नहीं जा सकता कि उसके अगले पल भी प्यार में ही बीतेगे । शांत चित्त बैठे हुए व्यक्ति को बेटे अथवा

नौकर के द्वारा फूट चुकी काँच की एक गिलास भी आग-बबूला कर देती है। वहीं जहाँ घर में उद्विग्नता का वातावरण बना हुआ हो, द्वार-चौखट पर किसी आगंतुक के द्वारा बजने वाली घंटी दो पल में ही उस सारे वातावरण को बदल डालती है और इस तरह क्रोध-उलाहना और खिन्नता से संतुष्ट व्यक्ति हंसते-मुस्कुराते हुए आगंतुक के स्वागत के लिए प्रस्तुत हो जाता है। कितना विचित्र है मनुष्य के चित्त का यह स्वरूप !

## पशुता और देवत्व : मन के ही पर्याय

अपने चित्त और उसके व्यवहार के चलते ही व्यक्ति कभी प्रेत हो जाता है और कभी देव। प्रेत और देव कोई अलग हस्तियाँ नहीं हैं। ये दोनों मनुष्य के ही पर्याय और चुनौतियाँ हैं। मनुष्य स्वयं ही कभी प्रेत बन जाता है और कभी देव। **मैंने प्रेतों को भी देखा है और देवों को भी। मुझे मनुष्य ही प्रेत नज़र आया है और वही देव।** तुम कभी किसी व्यक्ति को गुस्से में लड़ते-झगड़ते देखो, तो तुम्हें सृष्टि के नक्शे में प्रेतों का पाताल देखने की अपेक्षा ही नहीं रहेगी। तुम कह उठोगे क्या इंसान इतना क्रूर, अमर्यादित और उच्छृंखल हो सकता है ! आखिर दुनिया की धार्मिक किताबों में जिन्हें भूत कहा जाता है, वे ऐसे क्रोधियों और हिंसकों से ज्यादा विकराल नहीं होते होंगे। वे भूत भी आखिर इन्हीं भूतों के परिणाम हैं। ये इंसानी भूत ही मरकर पाताली भूत बनकर धरती के देवों को सताने की कोशिश करते हैं।

मैंने देवों को भी देखा है। कभी-कभी ऐसे संत और सज्जन पुरुषों से मिलना होता है कि हृदय स्वतः ही उनकी नेकनियती, उनकी सादगी और उनके दिव्य भावनात्मक तथा व्यावहारिक स्वरूप पर समर्पित हो जाता है। दुनिया में अगर बुरे लोग हैं, तो भले लोगों की भी कमी नहीं है। अच्छाई से बढ़कर कोई ऊँचाई नहीं होती। ऊँचा उठने के लिए अच्छा होना जरूरी है। हम स्वयं अपने जीवन को निहारें, तो स्वतः ही यह आत्म-पहचान हो जाएगी कि मैं कैसा हूँ; मेरा स्वरूप क्या है; मेरे चित्त में प्रेत और पशुता के अंधड़ छिपे हैं या भलाई और देवत्व के फूल खिले हैं। हंसना-रोना जीवन में ऐसे ही चलता रहेगा, पर हम दुनिया में ऐसे जीएँ कि हम हँसें और हमारे लिए जग रोये।

क्या हम इस बात को तवज्जो देंगे कि हम स्वयं अपने अन्तर्मन का आत्म-निरीक्षण कर सकें। कहीं ऐसा तो नहीं कि हम स्वयं ही सुबह शांत और शालीन थे, वहीं अभी निराश और उदास हो चुके हों। कभी हंसने और कभी रोने का खेल, क्या हमारे साथ भी चल रहा है ? कहीं हम मनुष्य के नाम पर ऐसे समुद्र तो नहीं हैं, जिसमें शांति-अशांति के क्लेश-संकलेश के ज्वार-भाटे उठते रहते हों ? अगर ऐसा है, तो हमें अपने चित्त और

उसके स्वरूप पर ध्यान देगा होगा; उसकी अन्तर्-अवस्था को बदलने के लिए विचार करना होगा और विवेकपूर्वक मनन करके उन आयामों को खोजना होगा, जिनसे कि हम स्वस्थ, सौम्य और सुंदर चित्त के स्वामी बन सकें ।

## चित्त के विविध रूप क्यों ?

प्रश्न है : आखिर चित्त के ये अच्छे-बुरे विविध रूप क्यों बन जाते हैं ? क्या इस उठापटक से मुक्त होने का कोई रास्ता है ? व्यक्ति का सही रास्ता तो उसके द्वारा विवेकपूर्वक आत्म-निरीक्षण करने से ही उपलब्ध होगा, लेकिन हम इतनी बात अवश्य जान लें कि हर व्यक्ति के चित्त में दो तरह के परमाणुओं का प्रवाह और प्रभाव परिलक्षित होता है और ये दोनों प्रवाह हमारे व्यक्तित्व की आंतरिक गहराई में प्रवहमान हैं । ऐसा समझें कि हमारे भीतर दो तरह के जल-प्रपात बनते हैं, उनमें से एक है संक्लेश का और दूसरा है शांति का । जब चित्त की संक्लेशयुक्त स्थिति होती है, तो व्यक्ति क्रोधित, खिन्न, उग्र अथवा उदास हो जाता है, वहीं चेतना की शांत-सरल स्थिति में कोमलता, मधुरता और प्रसन्नता की फुलवारी खिली हुई रहती है । क्लेश-संक्लेश की स्थिति अस्वस्थ चित्त का परिणाम है, वहीं शांत-ऋजु हृदय स्वस्थ चित्त का ।

हमारे भीतर क्लेश-संक्लेश किस स्तर तक चलता है यह जानने के लिए आप एक छोटा-सा प्रयोग करें । किसी शांत-एकांत स्थान में बैठकर कम-से-कम दस मिनट तक अपनी श्वास की स्थिति का निरीक्षण करें कि वह संतुलित है या असंतुलित, लयबद्ध है या अव्यवस्थित । एक स्वस्थ व्यक्ति एक मिनट में १३-१४ श्वास ग्रहण करता है । यदि यह मात्रा इससे ज्यादा है, तो मान लो चित्त की स्थिति अव्यवस्थित है; क्लेश-संक्लेशयुक्त परमाणुओं का ज्यादा जोर है । इस स्थिति को सुधारने के लिए आप संबोधि-ध्यान का एक छोटा-सा प्रयोग करें :

पहले दस मिनट तक मंद गति के गहरे श्वास-प्रश्वास पर अपने चित्त को स्थिर और एकाग्र करें । अगले दस मिनट में शरीर की अन्तर्यात्रा करें और प्रज्ञापूर्वक यह देखें कि शरीर के किस अवयव में कैसी अनुकूल या प्रतिकूल संवेदनाएँ उठ रही हैं । हम अपने ध्यान और चेतना को वहाँ केंद्रित करें । हम वहाँ तब तक टिकें, जब तक उस संवेदना से उपरत न हो जाएँ । हम इस प्रक्रिया के तीसरे चरण में अपने मनोमस्तिष्क का निरीक्षण करें और वहाँ चित्त में उठ रहे किसी भी प्रकार के क्लेश-संक्लेशयुक्त संस्कार के द्रष्टा बनें । भीतर जो भी उठे, उसके प्रति बुरे-भले का कोई भी भाव न हो । हम उसे केवल बोधपूर्वक देखने वाले बनें । आप ताज्जुब करेंगे कि हम जैसे संवेदनाओं

कैसे करें चित्त का रूपान्तरण



से उपरत हुए, ऐसे ही चित्त के संक्लेश-संस्कार से भी उपरत होते जा रहे हैं और इस तरह सहज ही हम अपने चित्त के विकृत परमाणुओं से मुक्त होते जा रहे हैं ।

## सजगता : चित्त-रूपांतरण की कुंजी

हमें चित्त के संक्लेशों से मुक्त होने के लिए चित्त और हर वृत्ति-अभिव्यक्ति पर सजग होना होगा । सजगता ही चित्त को रूपान्तरित करने की कुंजी है । अगर हमने सजगता न बरती तो ध्यान रखें, चित्त में ऐसा एक अंधा प्रवाह बहता है, जो बड़ी-से-बड़ी शक्ति को भी अपने में बहा लेने की सामर्थ्य रखता है । हमें अपने आप पर थोड़ा संयम और नियंत्रण भी रखना होगा । भले ही इसे कोई दमन कहे, पर मैं इसे शमन कहूँगा । यदि अभिव्यक्ति ही चित्त-वृत्ति से मुक्त करती होती, तो यह भोगवादी संसार कभी का स्वस्थ और मुक्त हो गया होता ।

हमें आत्मनियंत्रण भी करना होगा और अपनी बुरी आदतों और अभिव्यक्तियों पर भी अंकुश लगाना होगा । माना कि जीवन में पलने वाले कुछ दुर्गुण प्रकृतिगत या वंशानुगत होते हैं, लेकिन ऐसी खामियों पर तो हम अपना अंकुश लगा ही सकते हैं, जिनसे कि हमारी निजता जुड़ी हुई है । पहले हम अपनी निजी व्यक्तिगत कमजोरियों पर विजय पाएँ, एक दिन हम वंशानुगत एवं प्रकृति-प्रदत्त खामियों पर भी विजय प्राप्त कर लेंगे । चित्त को बदलना अथवा सुधारना टेढ़ी खीर है, पर अगर व्यक्ति थोड़ी बुद्धिमानी का उपयोग करे, तो उसकी वक्रता को सरल-सीधा किया जा सकता है । स्व-चित्त के प्रति स्वयं का सतत सावचेत रहना, यही गुर है चित्त को समझने-सुधारने और संवारने का । इसी से निखरता है व्यक्ति का मूल स्वरूप, स्वस्थ और प्रभावी स्वरूप ।



# स्वस्थ सोच के स्वामी बनें

---

औरों से गीतों की सौगात पाने के लिए  
कभी किसी को गाली मत दीजिए।

---

**जी**वन के दो महत्वपूर्ण पहलू हैं—एक है शरीर और दूसरा है मन। इन दोनों की समवेत स्वस्थता ही व्यक्ति को सुख-शांति का स्वामी बनाती है। शरीर स्थूल है, मन उसके भीतर बैठा उसका संचालक। मनुष्य का मन और उसकी बुद्धि ही उसकी चैतन्यधर्मिता को अभिव्यक्त करते हैं।

## मनुष्य, सर्वोत्कृष्ट कृति क्यों ?

शरीर की दृष्टि से मनुष्य अक्षम है, किंतु मन और उसकी चेतना की दृष्टि से वह सृष्टि का सर्वोपरि प्राणी है। यह हमारे मानवीय जीवन की विडम्बना ही है कि हम गोरैया की तरह आकाश में नहीं उड़ सकते; किसी मछली या घड़ियाल की तरह पानी में नहीं तैर सकते। हम बंदर की तरह न तो वृक्ष पर चढ़ सकते हैं और न ही चीते की तरह फुर्ती से दौड़ सकते हैं। हमारी दृष्टि बाज की तरह पैनी नहीं होती और नाखून बाघ की तरह मजबूत नहीं होते। बिच्छू कहलाने वाला एक छोटा-सा जंतु भी मनुष्य की सबल कहलाने वाली काया को मार गिराने के लिए पर्याप्त होता है। आखिर मनुष्य की शारीरिक अक्षमता के बावजूद उसमें ऐसी कौन-सी क्षमता है, जिसके चलते मनुष्य का रूप सर्वोपरि हुआ ?

प्रकृति के हाथों मनुष्य को एक ऐसी महान् सौगात मिली है, जिसने मनुष्य की उपयोगिता को हजार और लाख गुना ज्यादा बढ़ा दिया है। मनुष्य की यह क्षमता है—सोचने की क्षमता। अपनी इसी एक महानतम क्षमता के कारण मनुष्य धरती की संपूर्ण जीव-सत्ता में सर्वोपरि बन गया। सोचना, समझना और जीवन को बदलने में समर्थ होना मनुष्य की महानतम खोजों में एक है।

## सोच ही मनुष्य है

मनुष्य सोच सकता है, इसीलिए वह मनुष्य है। इससे भी बढ़कर बात यह है कि सोच ही मनुष्य है। मनुष्य की सत्ता से यदि सोचने-समझने की क्षमता को अलग कर दिया जाए, तो धरती पर मनुष्य की सत्ता का कोई अर्थ ही नहीं रहेगा; वह एक निर्बल, असहाय दोपाया जानवर भर रह जाएगा। सोच मनुष्य की अस्मिता है। सोचने की क्षमता मनुष्य की सबसे बड़ी शक्ति है। इस एक शक्ति से उसके जीवन की सारी शक्तियाँ और गतिविधियाँ संयोजित हैं।

मनुष्य का शारीरिक रूप से स्वस्थ और सबल होना अनिवार्य है, पर यह हमारी बदकिस्मती ही है कि हम केवल शरीर को ही स्वस्थ-सुंदर बनाने में लगे रहते हैं। उस तत्त्व के स्वास्थ्य और सौंदर्य पर ध्यान नहीं देते, जो कि शरीर और जीवन की समस्त गतिविधियों का आधार, स्वामी और प्रेरक है। हम अपने मन और उसकी सोच को स्वस्थ-सुंदर बनाने की बजाय केवल कायकेंद्रित ही हो जाते हैं। नतीजा यह निकलता है कि हम शरीर से भले कितने ही स्वस्थ क्यों न हों, मानसिक अवसाद, तनाव, घुटन, अनिद्रा, आक्रोश, उत्तेजना, ईर्ष्या, चिंता और प्रमाद के चलते न केवल हम रुग्ण ही बने रहते हैं, वरन् हमारा जीवन, जो कि हमारे लिए वरदान है, अभिशाप बना रहता है।

हम अपने शरीर को नहलाने और संवारने में जितना वक्त लगाते हैं, क्या अपने मन के लिए उसका आधा-चौथाई वक्त भी लगाने की कोशिश करते हैं? जीवन की सफलताओं में स्वस्थ-सुंदर शरीर की भूमिका अगर बीस प्रतिशत है, तो स्वस्थ-सुंदर मन की भूमिका अस्सी प्रतिशत। यह कैसी विचित्र बात है कि जिस पर बीस प्रतिशत ध्यान दिया जाना चाहिए, उस पर तो हम अस्सी प्रतिशत ध्यान देते हैं और जिस पर अस्सी प्रतिशत ध्यान दिया जाना चाहिए उस पर हम बीस प्रतिशत भी नहीं दे पाते ! स्वस्थ जीवन का स्वामी होने के लिए हमें तन-मन की स्वस्थता और सुमधुरता पर अपना ध्यान देना होगा।

जीवन में किसी खास वस्तु को देना प्रकृति की मेहरबानी है, पर उस खासियत का सही उपयोग करना मनुष्य की जवाबदारी। नींबू को आँख में डालकर आँसू टुलकाना या नींबू-पानी की शिकंजी पीकर स्वास्थ्य-लाभ प्राप्त करना यह सब मनुष्य पर ही निर्भर करता है। 'ग' से गणेश भी होता है और गधा भी; 'स' से सत्य भी होता है और सत्यानाश भी। किसी भी अक्षर या शब्द का कैसा उपयोग करना—यह आदमी की सोच और समझ पर ही निर्भर करेगा।

दिखने में सारे इंसान एक जैसे ही होते हैं—वही आँख-नाक-हाथ-मुँह, पर सबके सोचने-समझने के अलग-अलग तरीके होने के कारण हर मनुष्य दूसरे से भिन्न होता है, शायद इसीलिए स्वतंत्र होता है। सागर में हवाएँ पूर्वी चलती हैं, पर नौकाएँ अलग-अलग दिशाओं में जाती हुई नजर आती हैं। वस्तुतः नौका उस ओर ही चलती है, जिस ओर की दिशा का निर्धारण करके नाविक उस पर पाल बाँधता है। हमारी भी यही स्थिति है। हमारा जीवन भी उस ओर ही गतिशील होता है, जिस दिशा की ओर हमारी सोच होती है।

## जैसा बोये, वैसा पाए

जीवन में वही तो फलता है, जैसा अतीत में उसका बीजारोपण हुआ है। जैसा बोये-वैसा पाए; पर प्रकृति की यह विचित्र व्यवस्था है कि जितना बोये उससे सौ गुना पाए। आम का एक बीज बोओ, तो हजार फल पाओ; बबूल का एक बीज बोओ, तो हजार काँटे पाओ। मनुष्य की हर सोच उसके जीवन के खेत में बोया गया एक बीज ही है। यदि हम अच्छी सोच के बीज बोएँगे, तो जीवन में अच्छे फल पाएँगे। बुरी सोच का बीजारोपण तो हाथ में बबूल ही थमाएगा।

कहावत है—खाली दिमाग शैतान का घर होता है। मैं तो कहूँगा मनुष्य का मस्तिष्क तो एक ऐसा बगीचा है, जिसमें गुलाब, चमेली और चम्पा के बीजों को बोकर व्यक्ति अपने मस्तिष्क की बगिया को सुरम्य और सुवासित कर सकता है। ध्यान रखें, अगर हमने अपने जीवन में अच्छे बीज न बोये, तो उसमें कंटीली झाड़ियाँ और घास-फूस उगने से कोई नहीं रोक सकता। फालतू का घास-फूस तो ऐसे ही उगता रहेगा। बगीचा फल-फूल से हरा-भरा हो जाए, तब भी कुछ-न-कुछ अवांछित घास-फूस उग ही जाती है। जीवन को सुन्दर और मधुरिम बनाने के लिए हमें जहाँ स्वयं में अच्छी सोच के बीज बोने होंगे, वहीं अपने आप उग आने वाली बुरी सोच की घास-फूस को काटते भी रहना होगा—एक ओर उगाई हो, दूसरी ओर कटाई; अच्छी फसलों की उगाई हो, घास-फूस

स्वस्थ सोच के स्वामी बनें

की कटाई ।

हमारे जीवन में आज जो है, वह अतीत में सोचे गये विचारों का ही परिणाम है । हमारा भविष्य हमारे आज के सोचे गये विचारों का परिणाम होगा । अपने भविष्य को स्वर्णिम बनाने के लिए हमें उन बीजों पर ध्यान देना होगा, जिन्हें हम आज बो रहे हैं । प्रेम के बीज बोओगे, तो प्रेम के ही फल लौटकर आएँगे; क्रोध और गाली-गलौच के बीज बोकर अपने लिए विषैले व्यंग्य भरे वातावरण का ही निर्माण कर रहे हो । मनुष्य की जैसी सोच होती है, वैसे ही उसके विचार होते हैं; जैसे विचार होते हैं, वैसी ही अभिव्यक्ति होती है; जैसी अभिव्यक्ति होती है, वैसी ही गतिविधियाँ होती हैं, जैसी गतिविधियाँ होती हैं, वैसा ही चरित्र बनता है; जैसा चरित्र होता है, वैसी ही आदतें होती हैं । अपने चरित्र और आदतों को सुधारने के लिए तुम अपनी सोच और सोचने की शैली को सुधार लो, तो तुमने जड़ों को अमृत बनाकर फलों को अमृत बनाने का मार्ग अपने आप ही पार कर लिया ।

कोई भी दूसरा व्यक्ति हमारे साथ गलत व्यवहार नहीं करता । हमने पूर्व में जैसा व्यवहार किया था, दूसरे के द्वारा वही तो लौटकर आता है । दूसरे का हर कृत्य हमारे अपने द्वारा किये गये कृत्य की वापसी है । गालियों के बदले में काँटों की ही सौगात मिलेगी और तुम्हारी मंगल वाणी के बदले फूलों का गुलदस्ता ही समर्पित होगा । यह जगत तो व्यक्ति की अपनी ही प्रतिध्वनि है—प्यार देकर प्यार पाओ, नफरत देकर नफरत पाओ । क्या आप जीवन के इस विज्ञान को आत्मसात करेंगे कि यह जगत और कुछ नहीं, हमारे अपने ही जीवन की गूँज और अनुगूँज भर है !

## जीवन, एक अनुगूँज भर

जब एक बालक अपनी माँ से नाराज हो उठा, तो उसने माँ से साफ शब्दों में कह डाला, मम्मी, आई हेट यू—माँ, मैं तुमसे नफरत करता हूँ, नफरत करता हूँ, नफरत करता हूँ । बेटे के द्वारा ऐसा कहे जाने पर माँ ने उसे लपककर पकड़ना चाहा, मगर बच्चा माँ के हाथ न आया । वह गाँव के बाहर जंगल की तरफ भाग गया । उसके मन में माँ के प्रति अभी भी गुस्सा था । वह जंगल में जोर-जोर से चिल्लाकर कहने लगा—हाँ-हाँ, मैं तुमसे नफरत करता हूँ । माँ, मैं तुमसे नफरत करता हूँ । उसके जोर से चिल्लाये जाने पर उसे लगा कि इस जंगल में और भी कोई बालक रहता है, जो उसी को संबोधित करते हुए कह रहा है—हाँ-हाँ, मैं तुमसे नफरत करता हूँ । हाँ, मैं तुमसे नफरत करता हूँ ।

बच्चा जंगल में अपनी ही जैसी नफरत भरी आवाज सुनकर भयभीत हो उठा । वह पुनः अपने घर की ओर दौड़ा और घर पहुँचते ही अपनी माँ की छाती से लिपटकर रो पड़ा । माँ ने उसे यूँ रोता देख पूछा—क्या हुआ बेटे, इतने घबराये हुए क्यों हो ? बच्चे ने जंगल की बात सुनाई । माँ समझ गई कि वहाँ क्या हुआ । उसने बेटे से कहा—माई सन, इस बार जंगल में जाकर जोर से कहो—मैं तुमसे प्यार करता हूँ, प्यार करता हूँ, प्यार करता हूँ ! आई लव यू ! बेटे ने ऐसा ही किया । उसके द्वारा कहे गये प्यार भरे शब्द जंगल से प्रतिध्वनित होने लगे । उसे अपने बोले जाने पर हर बार यही सुनाया दिया—हाँ, मैं तुमसे प्यार करता हूँ, प्यार करता हूँ, प्यार करता हूँ, सो मच आई लव यू !

प्रेम के बदले में प्रेम के गीत लौटकर मिलते हैं और नफरत के बदले में नफरत के शोले । हमारा तो यह जीवन एक निरंतर जारी अनुगूँज भर है । कौन आदमी नहीं चाहता कि उसे प्रेम का संगीत सुनने को न मिले, आनंद का अमृत पीने को न मिले, पर क्या हम प्रेम और आनंद के बीज बोने के लिए तैयार हैं ? लौटकर वही तो आएगा, जिसकी तुम आज व्यवस्था कर रहे हो । इस बात की फ़िक्र मत करो कि हवाएँ किस ओर की चल रही हैं । तुम अपनी दिशा और लक्ष्य का निर्धारण करो । जिस दिशा की ओर नाविक पाल बाँधेगा, नौका उस ओर ही गतिशील होगी ।

कैसे बनें हम स्वस्थ सोच के स्वामी ? झाँकना होगा हमें अपने भीतर के गलियारे में और देखना होगा कि कैसी है हमारी आज की सोच । भीतर के बगीचे में फालतू की घास-फूस उग आई हो, तो चिंता करने जैसी कोई बात नहीं । हम घटिया स्तर के घास-फूस को काट फेंकें, बेहतर सोच के बीज बोएँ । आज नहीं तो कल मरुस्थल में मरुद्धान अवश्य लहलहा उठेगा । भटके हुए राहगीर को रास्ता जरूर मिल जाएगा ।

## सकारात्मकता में कई समाधान

स्वस्थ सोच का स्वामी बनने के लिए पहला सूत्र है : व्यक्ति सकारात्मक सोच का स्वामी बने । यह एक अकेला ऐसा सूत्र है, जिससे न केवल व्यक्ति की, वरन् समग्र विश्व की समस्याओं को सुलझाया जा सकता है । यह सर्वकल्याणकारी महामंत्र है । मेरी शांति, संतुष्टि, तृप्ति और प्रगति का अगर कोई प्रथम पहलू है, तो वह सकारात्मक सोच ही है । सकारात्मक सोच ही मनुष्य का पहला धर्म हो और यही उसकी आराधना का मंत्र ।

सकारात्मक सोच का स्वामी सदा धार्मिक ही होता है। सकारात्मकता से बढ़कर कोई पुण्य नहीं और नकारात्मकता से बढ़कर कोई पाप नहीं; सकारात्मकता से बढ़कर कोई धर्म नहीं और नकारात्मकता से बढ़कर कोई विधर्म नहीं। कोई अगर पूछे कि मानसिक शांति और तनाव-मुक्ति की कीमिया दवा क्या है, तो सीधा-सा जवाब होगा—सकारात्मक सोच। मैंने अनगिनत लोगों पर इस मंत्र का उपयोग किया है और आज तक यह मंत्र कभी निष्फल नहीं हुआ। सकारात्मक सोच का अभाव ही मनुष्य की निष्फलता का मूल कारण है।

## शिखर चूमना है, तो पुरुषार्थ करें

विचारों में नकारात्मकता के आते ही व्यक्ति उदास और दुःखी हो जायेगा; उसके प्रयास और प्रयत्न नपुंसक हो जाएंगे। जरूरी नहीं है कि व्यक्ति का हर प्रयास अपने पहले चरण में ही सफलता के शिखर को छू जाए। हम असफलताओं से न तो घबराएँ, न विचलित हों। व्यक्ति की हर असफलता सफलता के रास्ते का एक पड़ाव भर है। यह कम ताज्जुब की बात नहीं है कि थॉमस अल्वा एडीसन की एक सफलता के पीछे दस हजार असफलताएँ छिपी हुई रहीं। यदि व्यक्ति अपनी असफलता से हार खा बैठेगा, तो वह जीवन में कभी विजेता नहीं बन सकेगा। असफलता से हार खाने की बजाय हम उसके कारण को तलाशें और पहले से भी ज्यादा जोश और विश्वास के साथ नई सफलता की ओर कदम बढ़ा लें।

मैं एक ऐसे व्यक्ति के बारे में चर्चा करूँगा जो कि जीवन के इकीसवें वें वर्ष में व्यवसाय में असफल हो गया था। अपने बाइसवें वर्ष में उसने एक छोटा चुनाव लड़ा, लेकिन नाकामयाब रहा। चौबीसवें वर्ष में वह फिर व्यवसाय में असफल हुआ। सत्ताइसवें वर्ष में उसकी पत्नी का देहान्त हो गया। बत्तीसवें वर्ष में वह कांग्रेस के चुनाव में मात खा बैठा। चालीसवें वर्ष में सीनेट के चुनाव में खड़ा हुआ, लेकिन जीतने में कामयाब न हो सका। यही कोशिश उसने चवालीसवें वर्ष में भी की। सैंतालीसवें वर्ष में उप-राष्ट्रपति के चुनाव के लिए लड़ा, लेकिन भाग्य ने उसका साथ न दिया। तुम्हें यह जानकर आश्चर्य होगा कि इतनी असफलताओं से गुजरने के बाद भी उसका आत्मविश्वास शिथिल नहीं हुआ और जीवन के बावनवें वर्ष में वह अमेरिका का राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन हुआ।

क्या यह घटना हमारे लिए प्रेरणा का मंगल सूत्र बनेगी? असफल होना कोई बहुत बड़ी हानि नहीं है, लेकिन सफलता के लिए पुरुषार्थ न करना जीवन की सबसे

बड़ी असफलता है। तुम्हारी सोच यदि सकारात्मक हो जाए, तो तुम सच में ही जीवन के एक गहरे आत्मविश्वास से भर उठोगे और तब तुम्हारा जीवन तुम्हारे लिए बोझ न होगा, वरन् हर रोज जीवन की फिर से शुरुआत करने वाला बचपन भर होगा।

## जीवन बोझ नहीं है

बहुत पहले मैंने आपसे एक छोटी-सी कहानी कही थी—बारह वर्ष की एक बालिका तीन वर्ष के बालक को अपने कंधे पर बिठाए हुए पहाड़ी रास्ता पार कर रही थी। बालिका छोटी थी। रह-रहकर उसका सांस भर उठता। पहाड़ी रास्ते से गुजर रहे एक अन्य राहगीर ने उससे कहा—ओह बेटा, कंधे पर बड़ा भार है, थक गई होगी। बालिका ने उसकी निःश्वास भरी आवाज सुनी और उसने विश्वासपूर्वक तपाक से कहा—मिस्टर, तुम्हारे लिए यह भार होगा, मेरे लिए तो यह मेरा भाई है। उसने यह कहते हुए अपने छोटे भाई का माथा चूमा और प्यार से उसे गोद में लेकर दूने उत्साह के साथ आगे बढ़ चली, मंजिल पहुँच गई।

यदि भार माना, तो जीवन का छोटे-से-छोटा कृत्य भी तुम्हारी चेतना को नपुंसक कर बैठेगा; यदि भाई माना, अपना कर्तव्य माना, तो तुम्हें भार भी बोझिल नहीं लगेगा। तुम अपने आपको उतना ही हल्का पाओगे, जितना पानी में तैरते वक्त अपने आपको।

## समग्रता से सोचें

व्यक्ति के स्वस्थ सोच के लिए दूसरा संकेत यह दूँगा कि व्यक्ति सकारात्मकता के साथ हर बिंदु पर समग्रता से सोचें, व्यग्रता से नहीं। आवेश और आक्रोश के क्षणों में हमारी जो भी सोच और निर्णय होंगे, वे कभी विवेक और बुद्धिमत्तापूर्ण हो ही नहीं सकते। तुम कितने ही बुद्धिमान क्यों न हो, लेकिन व्यग्रता में लिये गए निर्णय में गुणात्मकता का अभाव ही होगा। मन में पलने वाली आशंका, आवेश और आग्रह व्यक्ति के मार्ग में पड़ने वाली वे चट्टानें हैं, जो आदमी को आगे बढ़ने से रोकती हैं। मन की शांति, औरों के प्रति विश्वास और कदाग्रहों से परहेज हमारी सोच के रास्ते को सदा प्रशस्त और निष्कटक बनाये हुए रखते हैं।

हमने कभी अपने आप पर ध्यान दिया कि हम छोटी-छोटी बातों पर क्रोधित और उत्तेजित हो जाते हैं? सोच पर अपना नियंत्रण न होने के कारण अथवा सोचने की क्षमता का पूरा उपयोग न करने की वजह से ही तो घर, परिवार और समाज के बिखरे-बंटवारे



होते हैं। तुम्हें यह पूरा हक है कि अपनी पत्नी के द्वारा कही गई बात पर ध्यान दो, पर इसका मतलब यह नहीं कि अपनी माँ की बात को सुने बगैर सास-बहू के झगड़े में अपने को उलझाओ। किसी भी बिंदु पर अगर ठंडे मिजाज से निर्णय न लिया, तो तुम घाटा खा बैठोगे। अगर अपने मिजाज को शांत-सौम्य न बना सके, तो ध्यान रखो कि दो के झगड़े में तीसरे का घुसना सदा आत्मघातक होता है।

चौराहे पर झगड़ रहे दो युवकों में से एक ने कहा, अगर अब कुछ बोला तो मेरा एक घूँसा तेरी बत्तीसी तोड़ देगा। दूसरे ने कहा, जा-जा; अगर मेरा घूँसा पड़ा तो तेरे चौंसठ दाँत तोड़ दूँगा।

तभी पास खड़े राहगीर ने टोकते हुए पूछा, कि बत्तीस दाँत की बात तो समझ में आती है, पर तू चौंसठ कहाँ से तोड़ेगा। उसने कहा, मुझे पता था तू जरूर बीच में बोलेगा। इसलिए बत्तीस इसके और बत्तीस तेरे !

बेहतर होगा—‘तू तेरी सम्हाल, छोड़ शेष जंजाल।’ हम अपनी सम्हालें, अपने में मस्त रहें।

## परिणामों पर भी नज़र रहे

हम अपने किसी भी सोच अथवा विचार को व्यक्त करने से पहले एक बार उसके परिणामों पर भी गौर फरमाने की कोशिश करें। कहीं ऐसा न हो कि जो सोचा, सो उगल दिया। बोलने से पहले तोलें। गलत बोली का जिसने भी उपयोग किया, उसे बाद में पछताना ही पड़ा। विचारों अथवा वाणी की अभिव्यक्ति ऐसी हो कि वह हमें भी सुख और सुकून दे और अगले को भी। जिसका परिणाम खिन्नता में बदले, उससे बचे हुए रहना ही सहज समझदारी है। वाणी का उपयोग तो तरकश से तीर का छूटना है; एक ऐसी लक्ष्मण-रेखा से बाहर निकलना है जिससे भीतर लौटने का कोई चारा न हो। यदि आज कुछ भी कहते-बोलते वक्त लगा कि यह ठीक नहीं था, तो भविष्य के लिए सावचेत रहने का संकल्प लो। जिसका अंकुश अपने हाथ में होता है, वह मनुष्य कहलाता है, वहीं जिसका अंकुश दूसरों के हाथों में होता है, जानवर उसी का नाम है।

सम्राट मिडास के नाम से हम सभी परिचित हैं, जो कि सोने का पुजारी था। जैसे आपकी आँखों में लक्ष्मी वास करती है, उसकी आँखों में सोने का बसेरा रहता था। वह सुबह उठते ही सोने को पुकारता और रात को सोने से पहले जी भर सोने को निहारता। उसका एक ही मंत्र था—गोल्ड इज गॉड। कहते हैं: एक बार उसके दरबार में एक ऐसा

आगंतुक पहुँचा जिसने उससे कहा था कि वह मिडास की हर इच्छा को पूरा कर सकता है। मिडास ने उससे कहा कि अगर ऐसा है तो वह यही वरदान चाहता है कि वह अपने हाथों से जिसे छुए, वह सोना बन जाए। आगंतुक ने कहा—मिडास, एक बार फिर से सोच लो। मिडास ने कहा—इसमें सोचना क्या है, यही तो मेरी अंतिम चाहत है। आगंतुक ने कहा—ठीक है मिडास। कल सुबह की पहली किरण फूटने के साथ ही तुम जिसे भी छूओगे, वह सोना हो जाएगा।

मिडास की रात बड़ी बेचैनी में गुजरी कि कब सुबह हो और कब सोने की बरसात शुरू हो। आश्चर्य, अगले दिन वह जिस शैया पर लेटा हुआ था, उसे छुआ तो वह सोने की बन गई। उसने दौड़कर दीवारों को छुआ तो उसके महल सोने के हो गये। वह खुशी के मारे पागलों-सी हरकत करने लगा। उसने पहाड़ों को छुआ, तो वे भी सोने के हो गये। चारों तरफ सोना ही सोना हो गया। वह सोना बनाते-बनाते थक गया। उसे प्यास लगी। पानी पीने के लिए उसने जैसे ही हाथ बढ़ाया, तो पानी भी सोने का हो गया; जैसे ही उसने भोजन को छुआ, तो वह भी सोने का हो गया। मिडास घबरा उठा। अगर उसके हाथ के छूने से रोटी भी सोने की हो जाएगी, तो वह क्या खायेगा और क्या पीएगा! वह रो पड़ा। तभी उस आगंतुक ने आकर मिडास से पूछा—कहो, कैसा रहा? मिडास ने कहा—अपनी मूर्खता का बोध।

क्या हमें अपनी मूर्खता का बोध होगा? सोना जीवन के लिए आवश्यक है, पर रोटी का काम तो रोटी से ही होगा। अपने सोच-विचार के किसी भी पहलू के परिणाम पर भी थोड़ा-सा ध्यान दे दें, तो मिडास की तरह पछताना नहीं पड़ेगा। सकारात्मक सोच से जीवन की शुरुआत हो और मंगल क्रियान्विति पर सोच की पूर्णाहुति। सदा स्मरण रखो, फल वहीं होंगे, जैसे उससे जुड़े हुए बीज होंगे। प्रेम के बदले में प्रेम लौटकर आएगा और नफरत के बदले में नफरत। तुम्हारी ओर से कही गई यह बात—आई हेट यू अनुगूँज बनकर तुम पर ही लौटकर आएगी। तुम्हारी आवाज तुमसे ही कहेगी—आई हेट यू। तुम ज़रा मुस्कुराकर प्यार से कहो—आई लव यू। तुम्हारी खुशी का ठिकाना न रहेगा, क्योंकि तब सारा अस्तित्व तुमसे यही बात बार-बार कहेगा—हाँ, मैं तुमसे प्यार करता हूँ, आई लव यू।

शायद दुनिया से आप यही कहलाना चाहते हैं; आई लव यू; आई लव यू। अगर ऐसा है तो हमारी ओर से भी ऐसा ही प्रयास हो, प्रेम का प्रयास हो।



# सकारात्मक हो जीवन-दृष्टि

---

हमारी सोच और शैली में ही छिपा है,  
जीवन की हर सफलता का राज

---

**ब**ड़ी प्यारी घटना है : बाल-मेले में एक वृद्ध गुब्बारे बेच रहा था। गुब्बारे हीलियम गैस से भरे हुए होते। स्वाभाविक था, आकाश में ऊँचे उठते हुए गुब्बारों को देखकर बच्चे उसकी ओर आकर्षित हों। वह बच्चों को गुब्बारे बेचता भी और बच्चों को अपनी दुकान की ओर आकर्षित करने के लिए जब-तब दो-पाँच गुब्बारे आकाश की ओर भी उड़ा देता। ये उड़ते हुए गुब्बारे ही उसका विज्ञापन होते।

एक बालक आकाश में ऊँचे उठते हुए गुब्बारों को देखकर चमत्कृत हो उठा। उसने आश्चर्य भरे स्वर में पूछा—दादा, आपके गुब्बारों में क्या काले रंग का गुब्बारा भी उड़ सकता है? वृद्ध ने बालक को एक ही नजर में देखा। वह प्रश्न का कारण समझ गया। उसने बच्चे से जीवन का रहस्य उद्घाटित करते हुए कहा—बेटे, गुब्बारा अपने रंग के कारण नहीं उड़ता। गुब्बारे के भीतर जो विश्वास और शक्ति भरी हुई है, उसी की बदौलत वह ऊपर उठता है।

वृद्ध-पुरुष का यह अनुभव क्या हमारे लिए प्रेरक नहीं है? मनुष्य के विकास में भी न तो उसका गौरा रंग सहायक होता है और न ही उसका काला रंग बाधक। मनुष्य का विकास उसके स्वयं में निहित गुणवत्ता के कारण ही संभावित होता है। जाति, कुल, देश और धर्म—ये सब व्यक्ति की कुछ व्यावहारिक व्यवस्थाओं के चरण हैं। व्यक्ति

का विकास तो उसकी अपनी सोच, जीवन-दृष्टि और जीवन-शैली से ही प्रभावी होता है। जीवन के गुब्बारे में दी गई हवाई फूँकों से बात न बनेगी, व्यक्ति को अपने विश्वासों, मान्यताओं और दृष्टिकोणों में परिवर्तन लाना होगा; उन्हें सकारात्मक बनाना होगा। जैसे हीलियम गैस भरने से गुब्बारा पूरी तरह ऊर्जस्वित और प्राणवन्त हो जाता है, ऐसी ही प्राणवत्ता का संचार हमें अपने जीवन में करना होगा।

## बेहतर हो जीवन-दृष्टि

क्या हम इस बात पर गौर करेंगे कि हमारा सोच और दृष्टिकोण कैसा है? निम्न स्तर के दृष्टिकोण को अपनाकर हम जीवन का स्तर भी गिरा बैठेंगे, वहीं अपनी मानसिकता को बेहतर बनाकर जीवन को उसकी गरिमा और यशस्विता प्रदान कर सकेंगे। हम अपनी जीवन-दृष्टि को बेहतर बनाकर अपने संपूर्ण जीवन का श्रेय साध सकते हैं। आदमी की सोच और शैली बेहतर हो, तो न केवल वह व्यक्ति महान् है, अपितु हर किसी के लिए वह विश्व के उपवन में खिला हुआ एक सुन्दर-सुवासित पुष्प है।

## हीरे की कणि है सकारात्मकता

मनुष्य से बढ़कर भला और क्या पूंजी हो सकती है! जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाकर हम जीवन की पूंजी को और बढ़ा सकते हैं। पड़ा-पड़ा पत्ता सड़ जाता है और खड़ा-खड़ा घोड़ा अड़ जाता है। नकारात्मकता आदमी के दुःखों की धुरी है। हम जीवन के प्रति एकमात्र सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाकर जीवन के हर दुःख, तनाव और हानि से उबर सकते हैं। नकारात्मकता वह हथौड़ा है, जो हर किसी के शांति के शीशे को तोड़-फोड़ डालता है। सकारात्मकता हीरे की वह कणि है, जो शीशे के अनपेक्षित भाग को हटा देती है और शेष भाग को उपयोगी बना देती है। नकारात्मकता विष है, तनाव और चिंता को बढ़ाने वाली प्रदूषित वायु है। सकारात्मकता सुबह की सैर है यानी एक हवा-सौ दवा।

जीवन में वंशानुगत रूप से मिलने वाले रोग और विकार इस कद्र आत्मसात हो चुके होते हैं कि उन्हें हटाना, उनसे मुक्त होना व्यक्ति के लिए असाध्य कार्य बन जाता है, पर यदि कैसा भी विकार क्यों न हो, क्लुषित वातावरण क्यों न हो, हानि-लाभ की उठापटक क्यों न हो, जीवन के प्रति सकारात्मक नजरिया अपनाकर वह न केवल विपरीत परिस्थितियों पर विजय प्राप्त कर सकता है, वरन् अपने प्रति अनुरूप और अनुकूल

वातावरण भी तैयार कर सकता है। हमारी मुश्किल यह है कि हम अपनी सोच और दृष्टि को बेहतर बनाने के लिए कोशिश नहीं करते। हम केवल चेहरे को सुन्दर बनाने में, चालू स्तर की मैग्जीन पढ़ने में या दुकानदारी में अपना सारा समय व्यय कर डालते हैं। जीवन को कैसे बेहतर बनाया जाए, इसके प्रति न तो जागरूक रहते हैं, न ही ईमानदारी से इसके लिए कोशिश कर पाते हैं।

## भीतर का सौंदर्य

जीवन में किसी भी क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने के लिए दस से बीस फीसदी भाग हमारे शारीरिक सौष्ठव और सौंदर्य पर जाता होगा, पर अस्सी से नब्बे प्रतिशत असर तो हमारे अपने नजरिये और दृष्टिकोण पर जाता है। हमारी मुश्किल यह है कि हम 'स्मार्टनेस' पर स्वयं की समग्रता केंद्रित कर देते हैं। अपनी सोच और शैली को बेहतर बनाने के लिए तो हम अपनी समग्रता का दसवाँ भाग भी केंद्रित नहीं कर पाते। जीवन के लिए यह सौदा बड़ा नुकसानदेह है। जिससे हमें नब्बे प्रतिशत लाभ होता है, उस पर हम ध्यान नहीं देते और जिससे दस प्रतिशत लाभ होता है, हम उतने-से लाभ के लिए स्वयं की नब्बे प्रतिशत ताकत को झौंक देते हैं।

हम एक छोटा-सा उदाहरण लें, विश्व-सुंदरी प्रतियोगिता का। सुंदरियाँ तो हजारों-लाखों होती हैं, पर क्या आपको पता है कि उन हजारों-लाखों में से किसी एक का चयन कैसे किया जाता है? हर सुन्दरी की सोच, शैली और जीवन-दृष्टि के आधार पर। यह तो सर्वविदित है कि दक्षिण अफ्रीका के लोग काले होते हैं और शायद कोई भी व्यक्ति नहीं चाहता होगा कि उसकी पत्नी काली हो। यह भी हम सभी जानते हैं कि विश्व-सुंदरियों की शृंखला में दक्षिण अफ्रीका की महिला भी विश्व सुंदरी का खिताब जीत चुकी है। सीधी-सी बात है कि गुब्बारा अपने काले रंग के कारण नहीं, वरन् उसके भीतर जो कुछ है उसी के बल पर वह ऊपर उठता है।

## वातावरण का प्रभाव

व्यक्ति के नजरिये और रवैये पर सबसे ज्यादा प्रभाव वातावरण का पड़ता है। गुरु विश्वामित्र का निमित्त पाकर कोई पुरुष राम, लक्ष्मण और भरत हुए, वहीं मंथरा के साथ रहकर कोई राजरानी भी कैकयी हो जाती है। एक त्याग और बलिदान का आदर्श बन जाता है, तो दूसरा मात्र स्वार्थपूर्ति का।

जब हम वातावरण की बात कर रहे हैं, तो हमें ध्यान देना होगा कि हमारे घर का

वातावरण कैसा है; विद्यालय और मित्र-मंडली का वातावरण कैसा है; जिस मोहल्ले में रहते हैं उसका और समाज का वातावरण कैसा है; हमारी धार्मिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि कैसी है, हमें इस बात पर गौर करना होगा। हमें इस बात पर गौर करना होगा कि हमारी शिक्षा-दीक्षा कैसी हुई; वह जीवन में कितनी आत्मसात हुई; हमारी शिक्षा हमारे लिए केवल रोजी-रोटी की आधार बनी या उसने हमें आनंदमय जीवन जीने की कला भी दी? किसी बेहतर शिक्षक और शिक्षण-संस्थान में अध्ययन कर हम अपनी और अपनी भावी पीढ़ी की स्थिति को सुदृढ़ और सकारात्मक बना सकते हैं। मैं अपने ही जीवन से जुड़ी हुई एक ऐसी घटना का जिक्र करूँगा, जिसमें एक शिक्षक ने मेरी जीवन-दृष्टि ही बदल डाली।

## आपबीती

बात तब की है जब मैं नौवीं-दसवीं की पढ़ाई कर रहा था। संयोग की बात कि परीक्षा में मेरी सप्लीमेन्टरी आ गई। क्लास टीचर सभी छात्रों को उनके प्रमाण-पत्र दे रहे थे। जब मेरा नंबर आया, तो न जाने क्यों उन्होंने खास तौर से मेरी मार्कशीट पर नज़र डाली। वे चौंके और उन्होंने एक नज़र से मुझे देखा। मैं संदिग्ध हो उठा, कुछ भयभीत भी। उन्होंने मुझे मार्कशीट न दी। उन्होंने यह कहते हुए मार्कशीट अपने पास रख ली कि जरा रुको, मुझसे मिलकर जाना।

जब सभी सहपाठी अपनी-अपनी मार्कशीट लेकर क्लास से चले गये, तो पीछे केवल हम दो ही बचे—एक मैं और दूसरे टीचर। उन्होंने मुझसे बमुश्किल दो-चार पंक्तियाँ कही होंगी, लेकिन उनकी पंक्तियों ने मेरा नजरिया बदल दिया, मेरी दिशा बदल डाली। उन्होंने कहा—क्या तुम्हें पता है कि तुम्हारे सप्लीमेंटरी आई है? चूँकि तुम्हारा बड़ा भाई मेरा अजीज मित्र है, इसलिए मैं तुम्हें कहना चाहता हूँ कि तुम्हारा बड़ा भाई हमारे साथ इसलिए चाय-नाश्ता नहीं करता, क्योंकि वह अगर अपनी मौज-मस्ती में पैसा खर्च कर देगा, तो तुम शेष चार भाइयों के स्कूल की फीस कैसे जमा करवा पाएगा! तुम्हारा जो भाई अपना मन और पेट मसोसकर भी तुम्हारी फीस जमा करवाता है, क्या तुम उसे इसके बदले में यह परिणाम देते हो?

उस क्लास-टीचर द्वारा कही गई ये पंक्तियाँ मेरे जीवन-परिवर्तन की प्रथम आधारशिला बनी। शायद उस टीचर का नाम था—श्री हरिश्चन्द्र पांडे। जिन्होंने न केवल मुझे अपने भाई के ऋण का अहसास करवाया, अपितु शिक्षा के प्रति मुझे बहुत गंभीर बना दिया और तब से प्रथम श्रेणी से कम अंकों से उत्तीर्ण होना मेरे लिए चुल्लू सकारात्मक हो जीवन-दृष्टि

भर पानी में डूबने जैसा होता । मैं शिक्षा के प्रति सकारात्मक हुआ । माँ सरस्वती ने मुझे अपनी शिक्षा का पात्र बनाया ।

व्यक्ति यदि अपने जीवन-जगत में घटित होने वाली घटना से भी कुछ सीखना चाहे, तो सीखने को काफी-कुछ है । सिर के बाल उम्र से नहीं, अनुभव से पके होने चाहिए । मनुष्य आयु से वृद्ध नहीं होता, वह तब वृद्ध हो जाता है जब उसके विकास की गति अवरुद्ध हो जाती है ।

किसी वृद्ध जापानी को उसकी पचहतर वर्ष की आयु में चीनी भाषा सीखते हुए देखकर कहा—अरे, भलेमानुष, तुम इस बुढ़ापे में चीनी भाषा सीखकर उसका क्या उपयोग करोगे ? तुम तो मृत्यु की डगर पर खड़े हो । पीला पड़ चुका पत्ता कब झड़ जाए, पत्ता थोड़े ही है । उस वृद्ध ने प्रश्नकर्ता को घूरते हुए देखा और कहा—आर यू इन्डियन ? प्रश्नकर्ता चौंका । उसने कहा—निश्चय ही मैं भारतीय हूँ, पर मेरे भारतीय होने का इस प्रश्न के साथ क्या सम्बन्ध ? वृद्ध ने मुस्कराते हुए कहा—भारतीय हमेशा अपने लिए मृत्यु को देखता है और जापानी हमेशा जीवन को । जो सवाल तुमने मुझे आज पूछा है, वह मुझसे तब भी किया गया था जब मैं साठ वर्ष का था । मैंने इस दौरान सात नई भाषाएँ सीखी हैं और पूरे विश्व का दो बार भ्रमण किया है ।

## आँखों में बसे जीवन का सपना

जिसकी आँखों में मृत्यु की छाया है, उनका नजरिया नकारात्मक है । जिनकी आँखों में सदा जीवन का सपना है, वे सकारात्मक दृष्टि के स्वामी हैं । दृष्टि के नकारात्मक होते ही मन में उदासी और निराशा घर कर लेती है; व्यक्ति की चिंतन-शक्ति चिंता का बाना पहन लेती है; बुद्धि की उच्च क्षमता होने के बावजूद जीवन में मानसिक रोग प्रवेश कर जाते हैं । हम यदि अपने नजरिये को बदलने में सफल हो जाते हैं, तो जीवन की शेष सफलताएँ आपोआप आत्मसात हो जाती हैं । गत सप्ताह ही तमिलनाडू के कारागार से एक ऐसा कैदी छूटा, जो कैद हुआ तब तो किसी हत्या का अभियुक्त था और जब जेल से छूटा, तो सीधा विश्वविद्यालय का प्रोफेसर बना । उसे अपने किये का प्रायश्चित्त हुआ । उसने कारागार में रहकर ही सारी शिक्षा ग्रहण की । मीडिया ने उसकी विश्वविद्यालय में नियुक्ति की जानकारी दी । इसे कहते हैं जीवन को बदलना, जीवन का रूपान्तरण करना ।

स्वयं की जीवन-दृष्टि को सकारात्मक बनाने के लिए हम सबसे पहले अपनी

सोच और मानसिकता को सकारात्मक बनाएँ। हम न केवल अपनी सोच को अच्छा बनाएँ, बल्कि हर किसी में अच्छाई ही तलाशें। औरों में अच्छाइयाँ देखना अच्छे व्यक्ति का काम है, किसी में बुराई देखना स्वयं ही बदसूरत काम है। किसी में अच्छाई देखकर हम उसका उपयोग कर सकेंगे, बुराई पर ध्यान देने से हम उसके द्वारा मिलने वाले लाभों से वंचित रह जाएँगे। आखिर दुनिया में ऐसा कौन है जो पूर्ण हो। कमियाँ तो हर किसी में रहती हैं। औरों में कमियाँ देखना क्या कमीनापन नहीं है? गिलास को आधा खाली देखकर यह मत कहो कि गिलास आधी खाली है। तुम्हारी दृष्टि उसके भरे हुए तत्त्व को मूल्य दे कि अजी साहब, गिलास तो पूरा आधा भरा हुआ है। गुलाब के पौधे पर नजर पड़े, तो यह न कहें कि गुलाब में काँटें हैं। हमारी दृष्टि गुलाब पर केंद्रित हो। हमारी भाषा हो—काँटों में भी गुलाब है। यह व्यक्ति की सकारात्मकता है।

## होंठों पर रहें आशा के गीत

हम अपने आप पर आत्मविश्वास रखें। जब काले रंग का गुब्बारा भी आकाश को चूम सकता है, तो हम निराशा के दलदल में क्यों धंसे रहें! व्यक्ति आशा के गीत गुनगुनाये, विश्वास के वैभव का स्वामी बने। आत्मविश्वास की बदौलत तो बड़े-से-बड़े पर्वत भी लांघे जा सकते हैं, फिर जीवन की अन्य बाधाओं की तो बिसात ही क्या! रास्ते पर पड़ी हुई हर चट्टान हमें यही तो कहती है—तुम आगे बढ़ो, चट्टानों की चिंता छोड़ो। आगे बढ़ने का जोश हो, तो चट्टानें स्वतः पीछे छूट जाया करती हैं।

हम स्वयं में घमंड और अभिमान को स्थान न दें, सरलता सदा जीवन की शोभा बनती है। व्यक्ति चाहे कितना भी छोटा क्यों न हो, पर जो बेवक्त में हमारे काम आया, उसे सदा याद रखें और उसके प्रति आभार से भरे हुए रहें। हमारी ओर से सबकी भलाई का ही प्रयास हो, पर नेकी कर कुएं में डाल। भलाई करें और भूल जाएँ। अपनी की हुई भलाई के अहसान का कभी किसी को अहसास न करवाएँ। जिसका हमने भला किया है और वह हमारा बुरा कर बैठा हो, तो खेद न लाएँ। जिसके पास जो होता है, वह वही देता है। तुम्हारे पास भलाईयों का भंडार था, तुमने भलाई की। उसकी ओर से बदले में बुराइयाँ लौटें, तो उसके प्रति दया-भाव लाते हुए मात्र मुस्करा दीजिए। जीवन में आने वाली हर विपरीतता पर जो मुस्कान और माधुर्य से भरा हुआ रहता है, वह जीवन और जगत के मन्दिर का अखंड दीप है, जिसकी रोशनी से उसका परिसर तो रोशन होता ही है, उसके प्रकाश को देखकर मंदिर के देवता भी प्रमुदित होते हैं।





# जीवन की चिकित्सा ध्यान के द्वारा

---

ध्यानयोग का नियमित प्रयोग हमें स्वस्थ और ऊर्जस्वित जीवन का स्वामी बनाएगा ।

---

**ध**रती का हर प्राणी माया, मिथ्यात्व और अविद्या से घिरा हुआ है । दुःख, तनाव और रोग उसके जीवन के सहचर बने हुए हैं । हर किसी के भीतर संवेग-उद्वेग का वह अन्धा प्रवाह उठता रहता है, जिसके चलते मनुष्य जब-तब, चाहे-अनचाहे मनोविकारों से घिर उठता है । वह स्वयं को मनोविकारों और राग-द्वेष के अनुबन्धों से बंधा हुआ पाता है ।

मनुष्य को अपने मनोविकार, कषाय और वृत्ति-संस्कारों के बारे में जितना ज्ञात है, उसके अज्ञात का हिस्सा उससे कई गुना ज्यादा है । विचार-विकल्प और विकार के रूप में दिखाई देने वाला मन, अन्तर्मन का स्थूल रूप है । स्थूल को बदलकर हम स्थूल-परिवर्तन को ही आत्मसात कर सकते हैं । जीवन के वास्तविक रूपान्तरण के लिए हमें स्थूल से सूक्ष्म की ओर, सूक्ष्मतम की ओर बढ़ना होगा । जीवन के सूक्ष्म स्वरूप में उतरकर ही हम स्वयं की संपूर्ण चिकित्सा कर सकेंगे, सदाबहार सुख-शांति और मुक्ति-लाभ के स्वामी हो सकेंगे ।

## उतरें, मन की तह तक

काम-क्रोध, माया-मोह, वैर-विरोध, द्वेष-दौर्मनस्य जीवन की सदा विपरीत

परिस्थितियाँ हैं। ये सदा ही बुरे हैं। बुराई से उपरत होना मनुष्य के लिए आत्मविजय है। मनोविकारों का हमें अनुभव है। इनके अमंगलकारी दुष्परिणामों से भी हम परिचित हैं। व्यक्ति इन्हें छोड़ना भी चाहता है; ज्ञानीजन इनको छोड़ने का उपदेश भी देते हैं, पर क्या व्यक्ति इनसे छूट पाया है? वह न चाहते हुए भी, छोटे-से निमित्त को पाकर पुनः-पुनः अपने मनोविकारों की आगोश में चला जाता है। उसे कई दफा आत्मग्लानि भी होती है और प्रायश्चित्त भी, पर जैसे खुजली का रोगी खुजलाहट उठने पर खुजलाने के लिए फिर-फिर प्रेरित और विवश हो जाता है, ऐसी ही स्थिति मनुष्य की है, प्राणिमात्र की है।

मनुष्य पशु नहीं है। पशुता उस पर हावी अवश्य हो जाती है। उसके पास बुद्धि है, हृदय है, चेतना की उच्च पराशक्ति है। मनुष्य अपने लिए कुछ कर सकता है। जीवन की व्यवस्थाओं को जुटाने के लिए तो वह कुछ-न-कुछ करता ही रहता है, जीवन के रूपान्तरण और चिर-स्वस्थ सौंदर्य के लिए भी वह काफी कुछ करने में समर्थ है। उसके पास जीवन है, जीवन का विज्ञान है, जीवन-विज्ञान के प्रयोग हैं। वह जीवन के साथ कुछ प्रयोग करके कल्याणकारी अमृतधर्मा स्वरूप को उपलब्ध कर सकता है। वर्तमान युग की यह सबसे बड़ी खोज है कि मनुष्य अपनी दृष्टि और मानसिकता में बदलाव ला सकता है। वह न केवल अपने मानसिक तनावों, विकारों और कषायों से उपरत होने में सफल हो सकता है, अपितु स्वयं की उच्च मानसिक क्षमता, प्रज्ञाशीलता और चेतना की अतिरिक्त विशेषताओं से भी मुखातिब हो सकता है।

मनुष्य के समग्र समवेत कल्याण के लिए ही धरती पर धर्म और अध्यात्म का जन्म हुआ है। ये दोनों ही बड़े पवित्र शब्द हैं। दोनों का ही धरती पर उपकार रहा है। ये दोनों जब अपने शुद्ध स्वरूप में होते हैं, तो निश्चय ही जन-जन का हित साधते हैं, लोकचक्र में धर्मचक्र के आलोक का प्रवर्तन करते हैं।

मानवीय स्वार्थों के चलते जब धर्म और अध्यात्म का स्वरूप अशुद्ध और संकीर्ण बन गया, तो प्रबुद्ध पीढ़ी ने इनसे दूर रहना शुरू कर दिया। जितना अशुभ धर्म का अशुद्ध और संकीर्ण होना हुआ, उतना ही प्रबुद्ध पीढ़ी का इनसे दूर होना।

## धर्म : जीवन का विज्ञान

धर्म वास्तव में जीवन पर आरोपित किया गया कोई कानून या विधान नहीं है। धर्म जीवन का सहचर है, जीवन के लिए सदा सुखावह है। धर्म हमें हमारे मानसिक विकारों और दुःखों से मुक्त करते हुए जीवन का चिर मंगलकारी सत्य-शिव और सुन्दर

स्वरूप प्रदान करता है। धर्म पंथ नहीं, जीवन का विज्ञान है; यह उपदेश नहीं, जीवन का आचरण है। प्रेम और पवित्रता, सत्य और शांति यही धर्म का सार रूप है।

प्रबुद्ध मानव-जाति अंधविश्वासों पर अमल नहीं कर सकती। वह जीवन का वास्तविक स्वरूप जीना चाहती है। उसके लिए सच्चा संन्यास गृह-त्याग नहीं, जीवन के विकारों, अंधविश्वासों और बुराइयों से छूटना संन्यास का सही अर्थ है। तुम विकार-विजय और स्वभाव-परिवर्तन को ही धर्म का मर्म मानो। विकार-विजय ही धर्म का मर्म है और स्वयं का स्वभाव-परिवर्तन ही धर्म की दीक्षा।

प्रश्न है : आदमी अपने विकारों से कैसे छूटे ? काम-क्रोध, वैर-विरोध, द्वेष-दौर्मनस्य से कैसे मुक्त हो ? क्या इसके लिए किन्हीं धार्मिक किताबों को पढ़ने और संतों के प्रवचनों को सुनने से बात बन जाएगी ? विकारों की जड़ों तक उतरे बिना विकार भला कैसे कटेगे। व्रत-नियम केवल औपचारिकता है, आध्यात्मिक उन्नति के सहायक पहलू हैं, पर भीतर उतरे बिना बात नहीं बनेगी, अन्तर्-पहचान और अन्तर्-शुद्धि नहीं हो पाएगी। इसके लिए व्यक्ति को अपने स्वयं के साथ कुछ निर्मल प्रयोग करने होंगे; उसे अपने भीतर वहाँ तक जाना होगा, जहाँ तनाव-विकार-अज्ञान और कषाय की जड़ें पाँव फैलाए बैठी हैं।

व्यक्ति चाहे कुछ भी क्यों न कर ले, पर जब तक भीतर में फैली हुई विकृत-विषैली जड़ों को काटा-मिटया नहीं जाएगा, तब तक उनकी अभिव्यक्ति और पुनरावृत्ति होती रहेगी। वह हर बार अपने मन के अंधे वेग के आगे विवश-बेबस हो जाएगा। जैसे बंधा हुआ पशु कहीं भी जाने और कुछ भी करने के लिए स्वतंत्र नहीं होता, ऐसी ही स्थिति विकारों से आबद्ध मनुष्य की होती है। वह स्वतंत्रता और मुक्ति का आकांक्षी होकर भी आबद्ध और परतंत्र बना रहता है।

जीवन का सत्य हमें इस बात का संकेत देता है कि व्यक्ति चिरकालीन आनंद का स्वामी बन सकता है। वह शांत मन, निर्मल चित्त, सुकोमल हृदय और प्रखर बुद्धि का संवाहक बन सकता है। वह विश्व-शांति और मैत्री का एक ऐसा अंग और सूत्रधार बन सकता है कि धरती को फिर से प्रेम और सत्य की सुवास मिल सके

## ध्यान : जीवन का वरदान

मनुष्य की मानसिक शांति, बौद्धिक ऊर्जस्वितता और आध्यात्मिक स्वास्थ्य-लाभ के लिए ध्यान एक बेहतरीन प्रयोग है। तनाव-मुक्ति और जीवन-शुद्धि के लिए ध्यान

स्वयं एक विज्ञान है। संबोधि-ध्यान, ध्यान के प्रयोगों का वह संस्कारित, परिष्कृत और वैज्ञानिक स्वरूप है, जिसका प्रयोग मानव-जाति के लिए हर हाल में स्वस्तिकर, कल्याणकर और लाभदायी है। हम जरा तलाशें कि क्या हम शरीर से रुग्ण हैं और आरोग्य से वंचित हैं; तनाव और मानसिक अशांति से पीड़ित हैं, क्या हमारी बुद्धि और स्मरण-शक्ति मंद है, क्या हम अपने मनोविकारों से व्यथित हैं, क्या हममें स्वार्थचेतना सघन है; क्या हम आत्मबोध और ईश्वरीय शक्ति से संबद्ध होने के इच्छुक हैं? यदि ऐसा है, तो बड़े प्रेम और अहोभाव से कहूंगा कि संबोधि-ध्यान के प्रयोग मानव-जाति के लिए वरदान हैं, संजीवनी हैं। संबोधि-ध्यान उनका है, जो इसे जीते हैं।

‘संबोधि’ शब्द, शब्द नहीं, साधक का पहला और अंतिम कदम है। संबोधि शब्द सम्यक् बोध का वाचक है, संपूर्ण बोध का सूचक है। बोध जीवन का मूलमंत्र है। बोध को हम सरल भाषा में ‘समझ’ कहेंगे, अनुभव भी। सम्यक् बोध और सजगता—दोनों मानों एक-दूसरे के पर्याय हैं। यदि कोई व्यक्ति बोध और प्रज्ञापूर्वक स्वयं के जीवन को देखे और तदनुसार जीने की कोशिश करे, तो वह जीवन की उच्चतर स्थिति को जी सकेगा। जीवन के अमृत रूपान्तरण के लिए जहाँ संबोधि-ध्यान के प्रयोग वरदान साबित होंगे, वहीं स्वयं के नियमित जीवन को ध्यानपूर्वक, सजगता और बोधपूर्वक संपादित करना संबोधि-साधना के ही सहज सहायक मंगल चरण हैं।

## संबोधि-ध्यान से आन्तरिक उपचार

संबोधि-ध्यान जहाँ हमें शरीर की संवेदनाओं, उसके गुणधर्मों, चित्त के वृत्ति-संस्कारों से शनैः-शनैः उपरत करता चला जाता है, वहीं शरीर में समाहित सूक्ष्म-विशिष्ट शक्ति का जागरण और ऊर्ध्वरोहण करता है, व्यक्ति के उन आन्तरिक विशिष्ट केंद्रों को सक्रिय करता है, जो हमारे तन-मन और बुद्धि-तत्त्व को हमारे अनुकूल, स्वस्थ और स्वस्तिकर बनाते हैं। संबोधि-ध्यान जहाँ हमारे शरीर में घर कर चुके असाध्य रोगों को भी अपनी चैतसिक तरंगों के द्वारा काटने की कोशिश करता है, वहीं व्यक्ति को अंततः अनन्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त पराशक्ति/परमशक्ति से संबद्ध करता है, जो कि जीवन का एक उच्च लक्ष्य है।

संबोधि-ध्यान का एक बेहतरीन प्रयोग है—साक्षी-ध्यान। स्वयं की सजगता ही इस ध्यान-प्रयोग की मूल चाबी है। ‘साक्षी’ शब्द का सहज अर्थ है—द्रष्टा, मात्र देखने वाला। शरीर, विचार और भाव-दशा—इनकी जो-जैसी स्थिति है, उसे सहज अन्तर्दृष्टिपूर्वक देखना और स्वयं की हर विपरीत आन्तरिक विकृति और संवेदना पर जीवन की चिकित्सा ध्यान के द्वारा

अपनी चैतन्यधर्मी किरणों को वहाँ तक प्रवाहित करना, ताकि उन विपरीत गुणधर्मों की स्वयमेव चिकित्सा हो सके, उनका जीवनदायी रूपान्तरण हो सके, यही साक्षी-ध्यान की मूल-दृष्टि है, यही मूल वस्तु ।

‘साक्षी-ध्यान’ के लिए हम सिर्फ मौन होकर बैठें और साँस पर ध्यान रखते हुए अपने चित्त की गतिविधि को, देहगत संवेदना को मात्र देखें । सिर्फ साक्षी बनकर, तटस्थ बनकर । संवेदनाएँ उठेंगी, बदलेंगी; मन की स्थिति और भावनाएँ उठेंगी, बदलेंगी; हम तन-मन की हर स्थिति और पर्याय-परिवर्तन को मात्र साक्षी बनकर देखें । जैसे-जैसे साक्षी-भाव सधेगा, विचारों-कषायों और भावनाओं का कोहराम शांत होता जाएगा । हम सहज, निराकुल, उल्लसित और स्वच्छ-स्वस्थ होते जाएंगे । हमारे भीतर आत्म-चेतना का आकाश साकार हो उठेगा ।

### प्रयोग :

साक्षी-ध्यान की स्वस्थ बैठक के लिए हम सहज-शांत और खुले हवादार स्थान का चयन करें । सुबह की पहली बैठक करने से पूर्व स्नान व शौच से अवश्य निवृत्त हो लें, ताकि प्रमाद और मल का विरेचन हो जाए । नियमित बैठक के लिए मोटा आसन रखें, जिससे कि बैठने में सुविधा रहे । कपड़े ढीले पहनें, श्वेत वस्त्र हों, तो और सुकून की बात है । शरीर में शिथिलता या जकड़न महसूस हो रही हो, तो थोड़ा योगासन या हल्का व्यायाम कर सकते हैं ।

हम सुखासन अथवा सिद्धासन में बैठें । ध्यान-मुद्रा ग्रहण, कमर सीधी, गर्दन सीधी, हाथ की स्थिति घुटनों पर—चैतन्य-मुद्रा में अथवा गोद में ।

### पहला चरण :

**श्वास-दर्शन : एकाग्र बोध**

**समय : २० मिनट**

ध्यान का संकल्प ग्रहण.....तन-मन की सहज स्थिति का निरीक्षण.....पूरी तरह तनावरहित..... हृदय में प्रसन्नता का संचार.....श्वास की सहज स्थिति का निरीक्षण और ध्यान में प्रवेश । (शुरुआती अभ्यास में हम दीर्घ श्वास और मंद श्वास का प्रयोग कर लें, शेष तो सहजता और सजगता ही साक्षी-ध्यान/संबोधि-ध्यान है ।)

दीर्घ श्वास— धीरे-धीरे लम्बे-गहरे श्वास लें.....लम्बे-गहरे श्वास छोड़ें.....धीरज से सांस लें.....धीरज से सांस छोड़ें । पूरक, कुंभक, रेचन । श्वास के आनापान के इस

चरण में प्रति श्वास पर सजग रहें, श्वास के स्वरूप को देखें, अनुभव करें। श्वास के इस स्थूल स्वरूप के प्रति चित्त की सजगता बरकरार रहे। दीर्घ श्वास-प्रश्वास का यह चरण करीब पाँच मिनट तक जारी रहे।

**मंद श्वास**—श्वास के प्रति चित्त की सजगता और गहरी होती जाए। श्वास की गति और मंद.....मंद से मंदतर। ध्यान की चेतना नासाग्र पर। श्वास की गति ज्यों-ज्यों धीमी होगी, चित्त की धारा ध्यान के अनुकूल होती जाएगी। श्वास लेते-छोड़ते समय यह बोध रहे..... श्वास मंद चल रही है.....मन शांत..... विचार शांत..... श्वास की गति मंद.....मंद.....। श्वासोच्छ्वास पर चित्त की एकाग्रता—लगभग पाँच मिनट तक।

**सहज श्वास**—श्वास और चित्त के बीच सहज संतुलन और तन्मयता का आभामंडल खिल जाने पर हम प्रयासमुक्त हो जाएँ, बोध और प्रज्ञापूर्वक श्वास की सहज स्थिति का निरीक्षण हो। शरीर से न कुछ करें, वाणी से न कुछ बोलें, मन से न कुछ सोचें.....केवल देखें.....श्वास को देखते रहें.....श्वास के आवागमन को देखते रहें.....श्वास के उदय-व्यय को देखते रहें.....मात्र श्वास-दर्शन.....श्वास की अनुप्रेक्षा-अनुपश्यना। चित्त की सजगता श्वास पर.....प्रतिपल-प्रतिक्षण श्वास का अन्तर्बोध.....। साधक केवल द्रष्टा रहे—श्वास के उदय होते रूप पर, विनष्ट होते रूप पर। उदय-व्यय के इस क्रम में साधक देख रहा है श्वास को, देखने वाले को; जान रहा है श्वास को, जानने वाले को।

साक्षी-ध्यान का यह चरण आनापान है अर्थात् आती-जाती श्वास को अन्तर्दृष्टिपूर्वक देखना। श्वास की सहज स्थिति पर लगभग दस मिनट तक एकाग्रता, सजगता और अन्तर्-बोध बना हुआ रहे। इस दौरान चित्त में जो कोई विकल्प-विचार-विकार उठे, तो साधक उसे केवल देखे, सिर्फ साक्षी बनकर, तटस्थ बनकर। साधक सहज संवर-भाव (द्रष्टा-भाव) रखे, चेतन-अचेतन मन में जमे संस्कारों, विकारों और कर्मों का आस्रव (आगमन) होना स्वाभाविक है। साधक की सजगता ही संवर का काम करेगी और उसकी अन्तर्दृष्टि ही निर्जरा का। साधक तो अपने हर कर्मास्रव और मन की पर्याय का साक्षी भर रहे, जैसे सरोवर के किनारे बैठकर पानी की लहरों को अपने से अलग देखा जाता है, ऐसे ही साधक अपनी सहज श्वास को, विचार हो, तो विचार को, कर्म-संस्कार हो, तो उसको, बस देखे; बोध और प्रज्ञापूर्वक देखता रहे विचारों की पर्यायों के शान्त होने पर पुनः श्वास पर स्थिर हों।

सहज सजगता और चित्त की एकाग्रता को साधने के लिए ही यह पहला चरण  
जीवन की चिकित्सा ध्यान के द्वारा

है। साधक पहले श्वास के स्थूल रूप को, फिर सूक्ष्म स्वरूप को और तत्पश्चात् उसकी सूक्ष्म संवेदना को जाने, अनुभव करे।

### दूसरा चरण :

देह-दर्शन : संवेदना-बोध

समय : २० मिनट

श्वास की सूक्ष्म संवेदना पर सजगता सधने के बाद शरीर में निहित सूक्ष्म शरीर का, शरीर के अन्तर्-प्रदेशों का निरीक्षण करें। साधक अन्तर्दृष्टिपूर्वक कंठ-प्रदेश की ओर निहारे। कंठ-प्रदेश के स्थूल रूप को, उसमें व्याप्त अणु-परमाणु, स्कंध, संवेदना, अहसास के प्रति सजग हों; वहाँ टिकें, रुकें तब तक, जब तक वहाँ के अहसासों से उपरत न हो जाएँ। स्वयं की सजगता और चेतना की धारा को कंठप्रदेश की ओर बना हुआ रहने दें। हमारी अन्तर्दृष्टि कंठप्रदेश में व्याप्त सूक्ष्म तत्त्व की ओर हो।

अन्तर्यात्रा के इस क्रम में साधक कंठ से हृदय प्रदेश की ओर उतरे, वहाँ रुके। हृदय की धड़कन, उसकी गति पर सजग हो, उसकी संवेदनशीलता पर जागरूक हो। स्वयं की अन्तर्केन्द्रित चेतना को हृदय की ओर प्रवाहित होने दे। चित्त और बुद्धि की धारा पूरी तरह हृदय की ओर सजग/तन्मय। साधक मात्र स्वयं की शरण में रहे, शेष सब अशरण-रूप। साधक अपनी सजगता को हृदय के हर पुद्गल-परमाणु और स्कंध के सूक्ष्म स्वरूप पर बना रहने दे, उस पर जागे।

साधक अपनी अन्तर्-सजगता का विस्तार हाथों की ओर होने दे। हाथ के जिस भाग में वेदना-संवेदना हो, या प्राण-ऊर्जा का विस्तार हो, उसे जाने; उस पर टिकें। पहले से व्याप्त दूषित तत्त्वों के निवारण के लिए स्वयं की प्राणधारा और चैतन्य-धारा को हाथों के अंतिम छोर तक विस्तृत होने दे। साधक सूक्ष्म-से-सूक्ष्म संवेदना पर जागरूक हो। हाथों की स्थिति सहज-स्वस्थ-सौम्य हो जाने पर साधक हृदय के मध्य क्षेत्र में अपनी सजगता को केंद्रित होने दे। वहाँ प्रवहमान और संवेदन के सूक्ष्म तत्त्व को पहचाने। हृदय का हर दूषण, प्रदूषण, विकार साधक की ध्यान-चेतना से स्वतः निर्मल रूपान्तरित होगा।

हृदय से साधक उदर-भाग की ओर उतरे। आंतों में पड़े मल-मूत्र पर साधक जागे। यही है वह तत्त्व, जिससे यह स्थूल काया पोषित होती है। गंदगी, मांस, मिट्टी से भरी इस देह के प्रति व्यक्ति की मूर्च्छा ही उसका मिथ्यात्व है। शरीर के विकार भी इसी मल-मूत्र से पोषित होते हैं। अच्छे से अच्छा खाया-पीया सब कुछ इन्हीं आंतों में मल-मूत्र

के रूप में पड़ा है। साधक यह स्थिति जाने, देह-मूर्च्छा से उपरत हो। उदर-भाग की दूषित/अपान वायु, हर वेदना-संवेदना का साधक द्रष्टा बने, जाने और उपरत होता जाए। काया की अशुचि स्थिति का निरीक्षण।

साधक ध्यान की निर्विकार चेतना से मल-मूत्र-स्थान का भी निरीक्षण करे। वहाँ के प्रदेशों में कोई अनुकूल-प्रतिकूल संवेग या संवेदन हो, विकार की अनुभूति हो, तो साधक जागे; अपनी चेतना की धारा को विकारों के घनत्व को काटने के लिए वहाँ तक उतरने दे। विकार उद्वेलित करें, तो साधक विचलित न हो। साधक के लिए यह स्थिति भी शुभ है। साधक उस विकार पर टिके, जागे; ध्यान की चेतना बनी रहे। विकार की जड़ता स्वतः टूटेगी, बिखरेगी; साधक निर्विकार स्थिति का स्वामी बनेगा।

विकारों की जड़ें ठेठ पाँवों तक व्याप्त रहती हैं। साधक की साक्षिता और सजगता अत्यंत सूक्ष्मता से पाँवों की ओर व्याप्त हो। शरीर के इस अधोभाग में ध्यान की सजगता के प्रगाढ़ होने से जहाँ काम-क्रोध की दूषित ऊर्जा का रूपान्तरण होगा, वहीं जड़ता, वेदना और मूर्च्छा का भी विरेचन होगा।

देह-दर्शन के क्रम में पहले हम ऊपर से नीचे की ओर उतरते हैं, फिर नीचे से ऊपर की ओर चढ़ते हैं। हमारी सजगता पाँवों से बैठक की ओर गतिशील हो।

साधक सुषुम्ना के द्वार पर (रीढ़ की हड्डी का अंतिम निचला सिरा) सजग हो, द्रष्टा बने। स्वयं की ध्यान-चेतना को सुषुम्ना पर इतना प्रगाढ़ होने दे, जितना पहले श्वास पर केंद्रित किया था। यह केंद्रीकरण अतिरिक्त शक्ति और चेतना को जाग्रत और ऊर्ध्वमुखी करने में मदद करेगा।

साधक साक्षी-चेतना से मेरुदण्ड के आंतरिक हिस्से पर केंद्रित हो, स्वयं की प्रगाढ़ सजगता के साथ धीरे-धीरे ऊपर उठे। इस ऊर्ध्वयात्रा में कटि-प्रदेश के मध्य क्षेत्र पर सजग हो। यह मनुष्य का स्वास्थ्य-केंद्र है। कमर के भाग में कोई दर्द-संवेदना हो, तो साधक उसके गुण-धर्म को देखे। स्वयं की ध्यान-चेतना से वह प्रदेश व्याप्त हो जाने दे। दर्द और पीड़ा का स्वतः विरेचन होगा।

साधक पीठ के मध्य-क्षेत्र का द्रष्टा बने। हृदय और पीठ के मध्य स्थल पर हो रही ऊर्जस्वित स्थिति पर जागे।

सुषुम्ना के रास्ते गर्दन-प्रदेश की ओर ध्यान की चेतना बढ़े। यहाँ साधक अपने सूक्ष्म शरीर की शक्ति का शोधन होने दे।



साधक द्रष्टा के करीब पहुँच रहा है । साधक पृष्ठ मस्तिष्क की ओर ऊर्ध्वमुखी हो । वहाँ व्याप्त सूक्ष्म ऊर्जा तरंग को जाने, अनुभव करे ।

कर्णेन्द्रिय में व्याप्त श्रवण-शक्ति पर साधक की सजगता..... ।

चक्षु-अंग में व्याप्त दर्शन-शक्ति पर साधक की सजगता..... ।

अग्र मस्तिष्क पर दोनों भौहों के मध्य अन्तर्दृष्टि-केंद्र पर साधक जागे और प्रज्ञा-लोक का अनुभव करे ।

### तीसरा चरण :

**चित्त-दर्शन : संस्कार-बोध**

**समय : २० मिनट**

साधक स्वयं के चित्त की स्थिति का अवलोकन करे । संवेदनाओं से उपरत हो जाने के कारण चित्त का गुण-धर्म शांत हो चुका है या अभी भी विकार, तनाव या वृत्ति-संस्कार हावी हैं ? चित्त की अन्तःस्थिति का निरीक्षण.....चित्त की जैसी भी स्थिति है, उसका अवलोकन.....चित्त का, कर्मास्रव का, अचेतन मन की पर्यायों का आत्मभावे निरीक्षण । साधक अपनी ध्यान-चेतना को, स्वयं की उदात्त ऊर्जा को चित्त की ओर केंद्रित रखे । चित्त के विकार, कषाय, राग-द्वेष की ग्रंथियाँ स्वतः शिथिल होंगी । स्व-चित्त के प्रति स्वयं का सम्यक् जागरण ही ध्यान की मूल आत्मा है ।

हम मस्तिष्क के ऊर्ध्व आकाश में, ज्ञान-प्रदेश में ध्यानस्थ हों । ध्यान की पराचेतना को स्वयं की बुद्धि एवं अतिमनस् तत्त्व के साथ एकाकार होने दें; स्वयं को आत्मविश्वास और असाधारण चैतन्य-शक्ति से आपूरित होने दें ।

### चौथा चरण :

**शून्य दर्शन : आत्मबोध**

**समय : कालातीत**

साधक स्वयं के भीतर साकार हो चुके शांत, सौम्य स्वरूप में विश्राम ले; स्वयं में स्वयं का उपराम, स्वयं में स्वयं का बोध.....काया के लोक में समाहित आत्मस्वरूप, आत्मचेतना, आत्मप्रकाश का अनुभव, आनंद, अन्तर्लीनता, संबुद्ध-दशा ।

यह विधि नौ माह तक की जाए । नौ माह नहीं, तो तीन माह की जाए । तीन माह नहीं, तो एक माह ही सही । एक माह भी ज्यादा लगता हो, तो पंद्रह दिन । वह भी ज्यादा लगते हों, तो सात दिन । यदि इससे भी कम करना हो, तो हम इस ध्यान-विधि की सात बैठक लगाकर इसके मंगल परिणामों को जीवन में आत्मसात कर सकते हैं । चित्त के

मनोविकारों का निर्मलीकरण होगा; तन-मन के आंतरिक रोगों का उपचार होगा, मानसिक शांति और आत्मशक्ति का विकास होगा । व्यक्ति देह में रहते हुए भी विदेहानुभूति की ओर अग्रसर होगा; स्वयं की सुप्त उच्च शक्ति का अभ्युदय होगा ।



## जितयशा फाउंडेशन का उपलब्ध साहित्य अपने घर में अपना पुस्तकालय

---

हमारी बौद्धिक क्षमता बेहद बढ़ी है, किन्तु सही मार्गदर्शन एवं विचारदृष्टि के अभाव में मनुष्य की चेतना विखंडित, विपन्न और घुटन के दौर से गुजर रही है। जितयशा फाउंडेशन आम आदमी के आत्मिक विकास एवं मानसिक शान्ति के लिए प्रयासरत है। फाउंडेशन श्री चन्द्रप्रभ जी जैसे महान चिंतक एवं दार्शनिक संत की जीवन-दृष्टि और महोपाध्याय श्री ललितप्रभ सागर जी के मनोवैज्ञानिक पहलुओं को आधार बनाकर जन-साधारण के लिए साहित्य के प्रकाशन एवं विस्तार की महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

हमारा दृष्टिकोण न केवल लाभ-निरपेक्ष है, अपितु लागत से भी कम मूल्य में श्रेष्ठ साहित्य को घर-घर तक पहुँचाना है। हमारे पाठकों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हुई है और हमें प्रसन्नता है कि हम भारतीय चिन्तन को ठेठ विदेशों तक पहुँचाने में सफल हुए हैं।

अपना पुस्तकालय अपने घर में बनाने के लिए फाउंडेशन ने एक अभिनव योजना भी बनाई है। इसके अन्तर्गत आपको सिर्फ एक बार ही फाउंडेशन को पन्द्रह सौ रुपये का अनुदान देना होगा, जिसके बदले में फाउंडेशन अपने यहाँ से प्रकाशित होने वाले प्रत्येक साहित्य को आपके पास आपके घर तक पहुँचाएगा और वह भी आजीवन। इस योजना के तहत एक और विशेष सुविधा आपको दी जा रही है कि इस योजना के सदस्य बनते ही आपको रजिस्टर्ड डाक से फाउंडेशन का अब तक प्रकाशित सम्पूर्ण उपलब्ध साहित्य निःशुल्क प्राप्त होगा।

यहाँ हम फाउंडेशन की उपलब्ध कुछ विशिष्ट पुस्तकों की सूची दे रहे हैं। इन पुस्तकों का आप स्वयं तो पठन-मनन करें ही, अपने मित्रों को भी उपहार के रूप में दे सकते हैं। इन अनमोल पुस्तकों के प्रचार-प्रसार के लिए आप सस्नेह आमंत्रित हैं।



## चिंतन-प्रधान विशिष्ट साहित्य (मात्र लागत मूल्य पर)

**ऐसे जिँँ :** श्री चन्द्रप्रभ

जीने की शैली और कला को उजागर करती विश्व-प्रसिद्ध पुस्तक। स्वस्थ, प्रसन्न और मधुर-जीवन की राह दिखाने वाली प्रकाश-किरण। पृष्ठ ११०, मूल्य १५/-

**ध्यानयोग : विधि और वचन :** श्री ललितप्रभ सागर

ध्यान-शिविर में दिये गये प्रवचन एवं अनुभवों का अमृत आकलन; साथ ही ध्यान-योग की विस्तृत विधि। एक चर्चित पुस्तक। पृष्ठ १८०, मूल्य २५/-

**इक साधे सब सधे :** श्री चन्द्रप्रभ

जीवन को नई चेतना और दिशा प्रदान करने वाला सहज अनुभूतिपूर्ण चिन्तन। ध्यान-साधकों के लिये काफी उपयोगी। पृष्ठ १४८, मूल्य ३०/-

**यह है मार्ग ध्यान का :** श्री चन्द्रप्रभ

ध्यान योग का मार्ग प्रशस्त करने वाली एक श्रेष्ठ लघु पुस्तिका। तनाव-मुक्ति एवं आत्म-समृद्धि के लिए सहज मार्गदर्शिका। पृष्ठ २४, मूल्य ३/-

**महावीर की साधना के रहस्य :** श्री चन्द्रप्रभ

भगवान् महावीर के जीवन, सिद्धान्त और रहस्यदर्शी सूत्रों के आधार पर साधना एवं मुक्ति के मौलिक मार्ग का दिग्दर्शन करती पठनीय पुस्तक। पृष्ठ १००, मूल्य १५/-

**जागो मेरे पार्थ :** श्री चन्द्रप्रभ

गीता पर दिये गये विशिष्ट आध्यात्मिक अठारह प्रवचनों का अनूठा संकलन। गीता की समय-सापेक्ष विवेचना। पृष्ठ २५०, मूल्य ४०/-

**महाजीवन की खोज :** श्री चन्द्रप्रभ

धर्म और अध्यात्म का समन्वय स्थापित करता एक सम्प्रदायातीत ग्रन्थ। आचार्य कुंदकुंद, योगीराज आनंदधन एवं श्रीमद् राजचन्द्र के सूत्रों एवं पदों पर दिये गये अत्यन्त गहन-गंभीर प्रवचन। पृष्ठ १४०, मूल्य २५/-

**अष्टावक्र-गीता :** श्री चन्द्रप्रभ

महान आध्यात्मिक ग्रन्थ अष्टावक्र-गीता का सरस-सरल अनुवाद। मूल सहित। पृष्ठ ५४, मूल्य ५/-

**पंछी लौटे नीड़ में :** श्री चन्द्रप्रभ

अन्तर-साधना एवं व्यक्तित्व-विकास के सूत्रों को मनोवैज्ञानिक तरीके से उजागर करता एक पठनीय ग्रन्थ। पृष्ठ १६०, मूल्य ३०/-

**महागुहा की चेतना :** महोपाध्याय ललितप्रभ सागर

संबोधि का प्रकाश आत्मसात् करने के लिए साधकों-मुमुक्षुओं को दिया गया अमृत मार्गदर्शन। संबोधि-सूत्र का मानक प्रवचन। पृष्ठ २२२, मूल्य ४०/-

**ध्यान का विज्ञान :** श्री चन्द्रप्रभ

ध्यान की सम्पूर्ण गहराइयों को प्रस्तुत करता एक अभिनव ग्रन्थ। अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर बहुचर्चित ग्रन्थ। पृष्ठ १२४, मूल्य २५/-

**न जन्म, न मृत्यु :** श्री चन्द्रप्रभ

मुक्ति और अमरता की खोज में उद्घाटित करती अन्तर्दृष्टि। अष्टावक्र-गीता पर दिये गए अद्भुत, अनुभव-सिद्ध प्रवचन। पृष्ठ १६०, मूल्य ३०/-

**अब भारत को जगना होगा :** श्री चन्द्रप्रभ

उस मानव चेतना के जागरण का आह्वान जो आज कायर और नपुंसक बन बैठी है। भारतीय दृष्टि एवं मूल्यों को नये सिरे से समझने का एक नवीनतम उपक्रम। पृष्ठ १५०, मूल्य ३०/-

**झरै दसहूँ दिस मोती :** श्री चन्द्रप्रभ

धर्म, अध्यात्म और जीवन-सिद्धान्तों के बीच स्थापित किया जाने वाला एक अनूठा सामंजस्य। भाषा सरल, भाव गंभीर। जो उतरे, सो पावे। पृष्ठ २२४, मूल्य ३०/-

**स्वयं से साक्षात्कार :** श्री चन्द्रप्रभ

मन-मस्तिष्क की ग्रन्थियों को खोलने के लिए ध्यान-शिविर में दिये गये अमृत प्रवचन। पृष्ठ १४६, मूल्य २०/-

**ज्योति कलश छलके :** महोपाध्याय ललितप्रभ सागर

जीवन-मूल्यों को ऊपर उठाने वाली एक प्यारी पुस्तक। भगवान् महावीर के सूत्रों पर प्रवचन। पृष्ठ १६०, मूल्य ३०/-

**शिवोऽहम् :** श्री चन्द्रप्रभ

जीवन की ऊँचाइयों को आत्मसात् करने के लिए एक तनाव-मुक्त स्वस्थ मार्ग-दर्शन। पृष्ठ १००, मूल्य १०/-

**तुम मुक्त हो, अतिमुक्त :** श्री चन्द्रप्रभ

श्री चन्द्रप्रभ जी के छोटे-छोटे सूक्त वचनों का संकलन। पृष्ठ १००, मूल्य ७/-

**रोम-रोम रस पीजे :** महोपाध्याय ललितप्रभ सागर

जीवन के हर कदम पर मार्ग दर्शाता चिन्तन-सूत्रों का दस्तावेज।

पृष्ठ ८८, मूल्य १०/-

**ध्यान की जीवंत प्रक्रिया :** सुश्री विजयलक्ष्मी जैन

ध्यान की सरल प्रक्रिया जानने के लिए बेहतरीन पुस्तक। ध्यान-शिविर का व्यौरा।

पृष्ठ १२०, मूल्य १०/-

**व्यक्तित्व-विकास :** महोपाध्याय चन्द्रप्रभ सागर

हमारा व्यक्तित्व ही हमारी पहचान है, तथ्य को उजागर करने वाला बाल-मनोवैज्ञानिक प्रकाशन।

पृष्ठ ११२, मूल्य १०/-

**संभावनाओं से साक्षात्कार :** महोपाध्याय चन्द्रप्रभ सागर

जीवन के विविध पहलुओं का स्पर्श करते हुए श्री चन्द्रप्रभजी के महत्त्वपूर्ण आलेख।

पृष्ठ ९२, मूल्य १०/-

**बिना नयन की बात :** महोपाध्याय चन्द्रप्रभ सागर

अध्यात्म-पुरुष श्रीमद् राजचन्द्र के प्रमुख पदों पर मानक प्रवचन।

पृष्ठ १००, मूल्य १०/-

**भगवत्ता फैली सब ओर :** महोपाध्याय चन्द्रप्रभ सागर

कुन्दकुन्द की गाथाओं पर मार्मिक उद्भावना। कम शब्दों में अधिक सामग्री।

पृष्ठ १००, मूल्य १०/-

**पर्युषण-प्रवचन :** श्री चन्द्रप्रभ

पर्युषण-महापर्व के प्रवचनों को घर-घर तक पहुँचाने के लिए एक प्यारा प्रकाशन; भाषा सरल, प्रस्तुति मनोवैज्ञानिक। पढ़ें कल्पसूत्र को अपनी भाषा में।

पृष्ठ १२०, मूल्य १७/-

**जिन-सूत्र :** श्री चन्द्रप्रभ

भगवान् महावीर की अमृत वाणी के नित्य पठन एवं प्रेरणा के लिए तैयार किया गया विशिष्ट संकलन; समणसुत्त का संक्षिप्त, संशोधित रूप। पृष्ठ १८०, मूल्य १०/-

**आत्मदर्शन की साधना :** श्री चन्द्रप्रभ

आत्म-साधना के मार्ग को प्रशस्त करते विशिष्ट उद्बोधन। अष्टपाहुड़ के विशिष्ट सूत्रों पर नवीनतम विश्लेषण।

पृष्ठ १६०, मूल्य १२/-

**शिखरजी तीर्थ दर्शन :** महोपाध्याय ललितप्रभ सागर

जैन तीर्थ सम्मेलित शिखरजी के इतिहास एवं विकास का विस्तृत ब्यौरा।

पृष्ठ ४८, मूल्य ५/-

**प्रेरणा :** महोपाध्याय ललितप्रभ सागर

संसार में समाधि के फूल कैसे खिल सकते हैं, आध्यात्मिक संतों के जीवन से जुड़े सच्चे घटनाक्रमों के द्वारा उसी का सहज विन्यास।

पृष्ठ १००, मूल्य १५/-

**सत्यम् शिवम् सुंदरम् :** श्री चन्द्रप्रभ

श्री चन्द्रप्रभ के विशिष्ट जीवन-सूत्रों का संकलन। बातें छोटी, भाव गहरे।

पृष्ठ १६०, मूल्य ३०/-

**जिन-शासन :** महोपाध्याय चन्द्रप्रभ सागर

काव्य-शैली में जैनत्व को समग्रता से प्रस्तुत करने वाला एकमात्र सम्पूर्ण प्रयास।

पृष्ठ ८०, मूल्य ३/-

**महान् जैन स्तोत्र :** महोपाध्याय ललितप्रभ सागर

अत्यन्त प्रभावशाली एवं चमत्कारी जैन स्तोत्रों का विशाल संग्रह।

पृष्ठ १२०, मूल्य १०/-

**भोमिया भावांजली :** प्रकाशकुमार दफ्तरी

अधिष्ठायक देव श्री भोमियाजी महाराज के लोकप्रिय भजनों का प्यारा-सा संकलन।

पृष्ठ ६४, मूल्य ७/-

**ऐसी हो जीने की शैली :** श्री चन्द्रप्रभ

जीवन और धर्म-पथ को पुनर्परिभाषित करते हुए जीने की साफ-स्वच्छ राह दिखाती पुस्तक।

पृष्ठ १७६, मूल्य ३०/-

**पंच प्रतिक्रमण सूत्र :** महोपाध्याय ललितप्रभ सागर

जैन धर्म परम्परा में प्रचलित पंच प्रतिक्रमण सूत्र का विधि सहित प्रकाशन। साथ ही सप्त-स्मरण, विविध स्तोत्र, रास एवं स्तुति-पाठ।

पृष्ठ २००, मूल्य २५/-

**श्री अगरचन्द नाहटा : व्यक्तित्व एवं कृतित्व :** शारदा गोस्वामी

प्राचीन साहित्य एवं इतिहास के मूर्धन्य विद्वान श्री अगरचंद नाहटा के जीवन-वृत्त एवं कर्तृत्व पर लिखा गया शोध-प्रबन्ध। साथ ही श्री नाहटा के लिखे-छपे पाँच हजार से अधिक लेखों का सूची-पत्र।

पृष्ठ ३००, मूल्य ५०/-

**जीवन, जगत और अध्यात्म :** महोपाध्याय ललितप्रभ सागर

जीवन-जगत की समस्याओं के समाधानों को ढूँढ़ने का प्रयास। सटीक प्रवचन।

पृष्ठ १८०, मूल्य ३०/-

**संबोधि-ध्यान-मार्गदर्शिका :** सुश्री विजयलक्ष्मी जैन

संबोधि-ध्यान-शिविर की प्रायोगिक मार्गदर्शिका; ध्यानयोग-विधि की एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक।

पृष्ठ ५६, मूल्य ५/-

**आँगन में आकाश :** महोपाध्याय ललितप्रभ सागर

तीस प्रवचनों का अनुठा आध्यात्मिक संकलन, जो आम आदमी को प्रबुद्ध करता है और जोड़ता है उसे अस्तित्व की सत्यता से।

पृष्ठ २००, मूल्य ३०/-

**जिनसूत्र :** श्री चन्द्रप्रभ

भगवान् महावीर की पवित्र वाणी का सार-संकलन।

पृष्ठ ८०, मूल्य ३/-

**अन्तर के पट खोल :** श्री चन्द्रप्रभ

ध्यान-साधकों को सत्य, शांति और आनंद की राह दिखाने वाली अभिनव पुस्तक।

पृष्ठ ९६, मूल्य १५/-

**World Renowned Jain Pilgrimages : Reverence and Art :**

Mahopadhyay Lalitprabh Sagar

Presents the Sculptural Art of Sixteen Jain Pilgrimages in its Artistic Excellence. It is Artistically printed & multicoloured publication with coloured photographs.

Page 160, Price 300/-

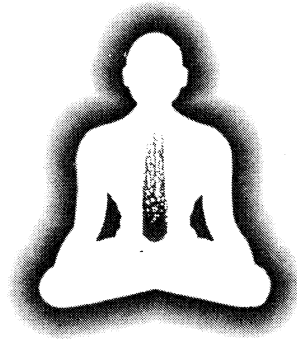
रजिस्ट्री चार्ज एक पुस्तक पर २०/- रुपये, न्यूनतम दो सौ रुपये का साहित्य मँगाने पर डाक-व्यय से मुक्त। धनराशि श्री जितयशाश्री फाउंडेशन (SRI JIT-YASHA SHREE FOUNDATION) कोलकाता के नाम पर बैंक-ड्राफ्ट या मनिआर्डर द्वारा भेजें। वी.पी.पी. से साहित्य भेजना शक्य नहीं होगा। आज ही लिखें और अपना ऑर्डर निम्न पते पर भेजें -

## श्री जितयशा फाउंडेशन

९ सी-एस्प्लानेड रो ईस्ट  
रूम नं. २८, धर्मतल्ला मार्केट  
कोलकाता-७०० ०६९  
फोन : २२०-८७२५

बी-७, अनुकम्पा द्वितीय  
एम. आई. रोड  
जयपुर-३०२ ००१ (राज.)  
फोन : ३६४७३७





## संबोधि-धाम

[ धर्म और जीवन-दर्शन का व्यावहारिक स्वरूप ]

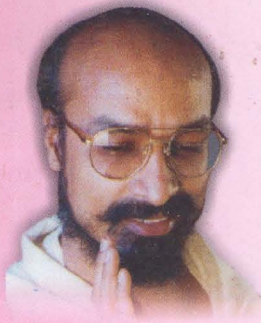
योग और साधना के क्षेत्र में संबोधि-धाम किसी एक पवित्र तीर्थ के समान है। धरती पर वे स्थान किसी श्रेष्ठ मन्दिर की तरह ही होते हैं, जहाँ मन की शान्ति और आध्यात्मिक सत्य की साधना होती है। संबोधि-धाम जोधपुर की कायलाना झील और अख्यराज सरोवर के समीप स्थित एक ऐसा साधना-केन्द्र है, जहाँ अब तक बीस हजार से अधिक लोगों ने सत्य, शान्ति और मुक्ति की साधना की है। हर व्यक्ति शान्त मन का स्वामी बने, बोधपूर्वक जीवन जिए और मुक्ति को आत्मसात् करे, संबोधि-साधना की सबके लिए यही पावन-प्रेरणा है।

संबोधि-धाम में प्रति सप्ताह गुरुवार और रविवार को नियमित ध्यान-सत्र आयोजित होते हैं और वर्ष में चार बार संबोधि-साधना के विशिष्ट शिविर आयोजित किये जाते हैं। संबोधि-साधना के द्वार प्राणीमात्र के लिए खुले हैं। यहाँ न जाति का भेद है और न पंथ का आग्रह। सर्व धर्मों का सम्मान और 'मानव स्वयं एक मन्दिर' की सद्भावना को लिए संबोधि-धाम जन-जन की सेवा के लिए समर्पित है।

संबोधि-धाम का हरा-भरा वातावरण, यहाँ की शान्ति और नैसर्गिकता साधक को साधना की अनुकूलता प्रदान करती है। मन से रुग्ण लोगों के लिए यहाँ ध्यानयोग के अलावा मनस् चिकित्सालय भी है, जिसमें जर्मनी से आयातित 'पुष्प-अर्क' के द्वारा शर्तिया उपचार होता है। □

---

**संबोधि-धाम, कायलाना रोड़, जोधपुर-4 (राज.) © 751902**



“स्वस्थ और मधुर जीवन का पहला और आखिरी मंत्र है : सकारात्मक सोच । यह एक अकेला ऐसा मंत्र है, जिससे न केवल व्यक्ति और समाज की, वरन् समग्र विश्व की समस्याओं को सुलझाया जा सकता है । यह सर्वकल्याणकारी महामंत्र है । मेरी शान्ति, संतुष्टि, तृप्ति और प्रगति का अगर कोई प्रथम पहलू है, तो वह सकारात्मक सोच ही है । सकारात्मक सोच ही मनुष्य का पहला धर्म हो और यही उसकी आराधना का बीज-मंत्र । सकारात्मक सोच का स्वामी सदा धार्मिक ही होता है । सकारात्मकता से बढ़कर कोई पुण्य नहीं और नकारात्मकता से बढ़कर कोई पाप नहीं; सकारात्मकता से बढ़कर कोई धर्म नहीं और नकारात्मकता से बढ़कर कोई विधर्म नहीं । कोई अगर पूछे कि मानसिक शान्ति और तनाव-मुक्ति की कीमिया दवा क्या है, तो सीधा-सा जवाब होगा – सकारात्मक सोच । मैंने अनगिनत लोगों पर इस मंत्र का उपयोग किया है और आज तक यह मंत्र कभी निष्फल नहीं हुआ । सकारात्मक सोच का अभाव ही मनुष्य की निष्फलता का मूल कारण है ।”

— श्री चन्द्रप्रभ